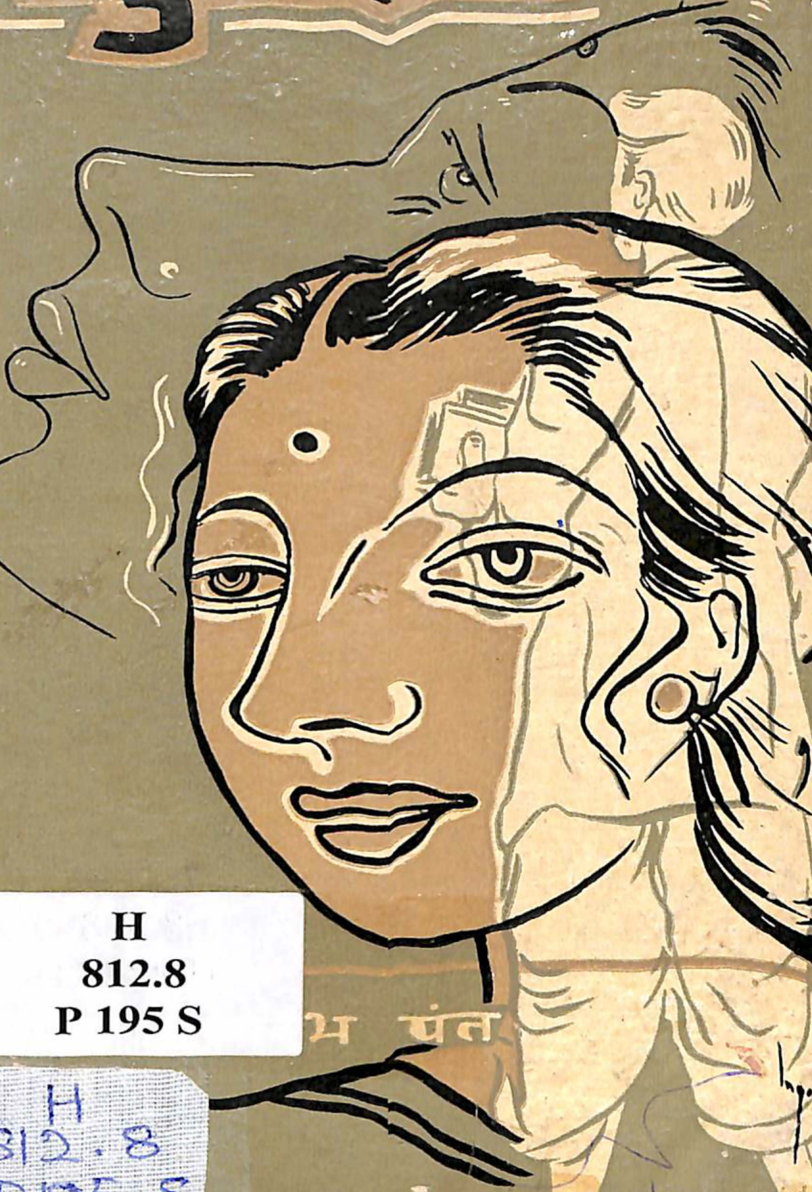

H
812.8
P 195 S

H
812.8

CATALOGUED

सुजाता

सामाजिक नाटक

लेखक

गोविन्दवल्लभ पंत

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-६

SUJATA

by

Govind Vallabh Pant

Rs. 1.50

Library IIAS, Shimla
H 812.8 P 195 S
00039857

COPYRIGHT © ATMA RAM & SONS, DELHI-6.

39857
21.6.72
H
812.8
P195 S

प्रकाशक

रामलाल पुरी, संचालक
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली
हौज खास, नई दिल्ली
चौड़ा रास्ता, जयपुर
माई हीराँ गेट, जालन्धर
बेगमपुल रोड, मेरठ
विश्वविद्यालय क्षेत्र, चण्डीगढ़

तीसरा संस्करण : १९६१

मुद्रक

सत्यपाल धवन
दी सैण्ट्रल इलैक्ट्रिक प्रेस,
८०-डी, कमलानगर, दिल्ली-६

प्राक्कथन

नाटक सर्वसाधारण की वस्तु है। नगर, गाँव और व्यक्ति में जीवन, जागरण और जातीयता के लिए उसकी आवश्यकता है। वह नए, पुराने और आगामी मानव, समाज और जगत् का मानचित्र है।

सच्चा नाटक अपने-आप में मनोरंजन है, मनोरंजन का लक्ष्य बनाना नहीं पड़ता उसे। वह सीधे प्रचार और उपदेश का भी माध्यम नहीं है। कोरे उपदेश सुनना कोई नहीं चाहता। नाटक सिद्धान्तों का कर्म में अनुवाद करता है।

नाटक की मूलभूत सफलता है अन्तर्दर्शन। अन्तर्दर्शन होने पर ही वह लिखने, समझने और खेलने में आसान होता है। जिस तरह कुशल चित्रकार बनाने से पहले कैनवेस पर अपने चित्र को देख लेता है, ऐसे ही नाटककार अपने नाटक का सबसे पहला दर्शक है।

रिवॉल्विग स्टेज को नाटक का चरम विकास समझना ठीक नहीं। कथानक, भाव-भाषा की उलझन और जटिलता को साहित्य नाम देना भी एक विकृति हैं। इन दोनों जंजालों से बाहर निकले बिना नाटक सर्वसाधारण की सम्पत्ति न हो सकेगा।

अब ओपन एयर स्टेज ने ग्राम-नगर, प्रान्त-प्रान्त और अन्तर्जातीयता के लिए अनेक संभावनाएँ हमारे सामने रख दी हैं।

कई साल पहले मैंने एक नाटक तैयार किया था। उसी कथा-वस्तु पर सब-का-सब फिर नए सिरे से लिखा है। पात्र, अंक औ दृश्यों की योजना सब बदल गई है।

—गोविन्दवल्लभ पंत

पात्र

सुजाता	:	नाटक की नायिका
रेखा	:	सुजाता की सौत
डॉ० बिसन	:	सुजाता का मित्र
विजय	:	सुजाता का पति
पिता	:	सुजाता के पिता
बदरी	:	सुजाता के पिता का नौकर
भैया	:	सुजाता का भाई

पड़ोसिन, विद्यार्थी और चपरासी

पहला अंक

*

पहला दृश्य

स्थान—विजय की बैठक।

समय—दिन।

[चारों ओर से बन्द घर में कैद सुजाता एक पुस्तक पढ़ रही है। उसकी पड़ोसिन उसे पुकारती है।]

पड़ोसिन—(नेपथ्य से) क्या कर रही हो, सुजाता दीदी ?

सुजाता—(पुस्तक अलग रखकर) इस आजन्म जेल में अपने भाग्य का दण्ड भुगत रही हूँ।

पड़ोसिन—(वहीं से) पढ़े-लिखे होकर ऐसा व्यवहार ! स्कूल के बच्चों को क्या वह यही पढ़ाते होंगे ? चारों ओर से तुम्हें तालों में बन्द कर जाने से उनका मतलब क्या है ?

सुजाता—मेरे अविश्वास के सिवा और क्या मतलब हो सकता है ? नारी के इस जन्म को धिक्कारती हूँ।

पड़ोसिन—(वहीं से) कभी नहीं, दीदी ! यह उन्हीं की युगों से प्रसारित विचारधारा है, अब लोहे की दीवार बन गई। हम ढा देंगी उसे। पुरुष और नारी गृहस्थी के ये दो चक्र, इनमें से एक छोटा और दूसरा बड़ा रहेगा तो गाड़ी की सहज-सरल गति में अन्तर पड़ जाएगा।

सुजाता—वे दिन-रात, अँधेरा-उजाला—चाहे जो भी कर सकते हैं। हमें उनसे कुछ पूछ सकने का अधिकार नहीं। कठपुतली-सी उनके सन्देहों की डोरियों में बँधी नारी, कैसे बहन, उसकी मुक्ति होगी ?

पड़ोसिन—(**वहीं से**) मुक्ति ? आसानी से क्या कोई सौंप देता है ? वह अपने हाथ से वसूल की जाती है और सीधी अंगुली से भी नहीं। आज दृढ़ होकर उनसे पूछो, रोज बाहर जाते समय तुम्हें कैद कर जाने का कारण क्या है ?

सुजाता—कहते हैं, पास-पड़ोस में कुछ लोग ठीक नहीं।

पड़ोसिन—(**वहीं से**) बुरे लोगों के लिए इन बाहर मे लगाए गए तालों में क्या मजबूती हो सकती है ? नारीत्व का यह घोर अपमान ! इन रोज के तालों में तुम्हारी आत्मा दुर्बल होती जा रही होगी। उनसे कहती क्यों नहीं, ताले ही लगाने हैं तो तुम भीतर ही से लगा लिया करोगी।

सुजाता—(**बाहर से दरवाजे की खटखटाहट पर ध्यान देकर**) आ गए क्या ? स्कूल में जल्दी ही छुट्टी हो गई जान पड़ती है। (**द्वार के पास आकर भीतर की सांकल खोलती है। बाहर का ताला खोलकर डॉ॰ बिसन आता है**) कौन डॉक्टर विसन ? तुम्हें कैसे यहाँ की चावी मिल गई ? वह कहाँ हैं ?

डॉ॰ बिसन—हाँ, उन्होंने ही तुम्हें बुला भेजा है।

सुजाता—नहीं समझी।

डॉ॰ बिसन—सुजाता, जाना ही पड़ेगा। तुम्हारे पिताजी बीमार हैं, मृत्यु के संकट में हैं। गाँव से खबर आई है। मास्टर साहब मुझे इलाज के लिए वहाँ ले जाना जाहते हैं, मेरी मोटर में ही।

सुजाता—(**हिचकिचाती हुई पीछे को हटती है**) लेकिन···नहीं, बिसन।

डॉ॰ बिसन—कौन जाने क्या हो ? डॉक्टर क्या किसी को मौत से बचा लेता है ? पिता के लिए तुम्हारे हृदय में स्नेह होना चाहिए। अगर उनको कुछ हो गया तो ?···क्यों, तुम्हें दुविधा क्या है ?

सुजाता—विसन, हम दोनों बचपन के साथी हैं और बहुत दिन तक एक ही स्कूल में पढ़े हैं।

डॉ० बिसन—अब ऐसे दुर्बोध अन्धविश्वास को खोद निकालने की क्या बात है? समय खोना नहीं है, जल्दी करो।

सुजाता—बिसन, वह स्वयं क्यों नहीं आए? उन्होंने तुम्हें भेजा है मुझे लेने के लिए? चाबी सौंप दी! मेरे विश्वास के लिए बड़ी विचित्रता है यह!

डॉ० बिसन—ऐसा चोर है क्या डॉक्टर बिसन? जाकर कह देता हूँ, वह ही आकर ले जायें तुम्हें।

सुजाता—पिताजी! बीमार? **(एकाएक)** ठहरो, चलती हूँ। कपड़े?

डॉ० बिसन—कहीं निमन्त्रण में जा रही हो क्या? मृत्युशैया में पड़े हुए बीमार बाप का मुख देखने के लिए, कपड़े!

[सुजाता जल्दी से भीतर जाकर कन्धे पर एक शॉल डाल लेती है। इस अवसर में डॉ० बिसन जेब से एक लिफाफा निकालकर मेज पर रख देता है। दोनों बाहर जाते हैं। डॉ० बिसन द्वार बन्द कर उसमें ताला लगा देता है। अगले वन-पथ का परदा गिराकर समय का अतीत दिखाता है और तुरन्त ही उठ जाता है। विजय बाहर से ताला खोल कर लिए आता है।]

विजय—**(हाथ की किताबें और ताला मेज पर रखकर पुकारता है, सहज स्वर में)** सुजाता! **(कोई उत्तर न मिलने पर बिगड़कर आवाज देता है)** सुजाता! सुजाता! रसोईघर में कानों में तेल डालकर सो गई हो क्या? **(बड़बड़ाता हुआ भीतर चला जाता है। वहाँ भी पुकारता है—सुजाता! सुजाता! कोई उत्तर न मिलने पर बाहर आता है)** कहीं नहीं! कहाँ गई? दोनों ताले ठीक और अपनी जगह पर। **(सिर पकड़कर कुर्सी में जा पड़ता है)** अन्त में वही हुआ। **(अपने सिर के**

वालों में दोनों हाथों की अंगुलियाँ खोंसकर उठ जाता है और बाल पकड़े-पकड़े आईने में मुख देखता है) वही हुआ, जो सोचा था।

प्रतिबिम्ब—(प्रतिध्वनित होकर) जो वार-वार सोचोगे वही तो होगा। विचार सत्य का पिता है।

विजय—कौन है तू वोलने वाला? **(आश्चर्य से इधर-उधर देखता है)।**

प्रतिबिम्ब—तेरी आत्मा की प्रतिध्वनि हूँ मैं। तेरे रूप का प्रतिबिम्व!

विजय—(फिर कुर्सी पर जा पड़ता है और दोनों बाँहों में मुँह छिपा लेता है) आज तक क्यों नहीं वोला तू?

प्रतिबिम्ब—मैं बराबर वोलता आ रहा हूँ। मेरी आवाज़ काल की धारा की तरह अटूट है। तू ही नहीं सुनता तो मेरा क्या अपराध?

विजय—क्या बिगाड़ा है मैंने किसी का?

प्रतिबिम्ब—तू आदिकाल की गुफाओं का निवासी। आखेट की बर्बरता नहीं गई है अभी तक तेरी। तू बहुविवाह में प्रीति रखने वाला, तू एक पति पर प्राणों को निछावर करने वाली नारी का मूल्य नहीं जान सकता। तू ने उस पर रोज़-रोज जो सन्देह जमा किये, वे ही आज घनीभूत होकर उसे उड़ा ले गए।

विजय—कौन उड़ा ले गया उसे? कहाँ गई वह?

प्रतिबिम्ब—मुझे क्या खबर?

विजय—मैं तो जानता हूँ। वही डॉक्टर बिसन, उसके सिवा दूसरा और हो कौन सकता है? वही, जरूर उसी का दाँव हाथ लग गया आज। वही भगा ले गया। क्या मैं झूठ कह रहा हूँ?

[प्रतिबिम्ब कोई उत्तर नहीं देता]

विजय—अब क्यों नहीं देता तू जवाब? हे मेरी आत्मा के

प्रतिविम्ब ! मुँह क्यों नहीं खोलता ? कहाँ गया तू ? (**आईने को उठाकर अपने प्रतिबिम्ब से पूछता है**) बताता क्यों नहीं ? (**मेज पर पड़े हुए पत्र को देखकर आईना रख देता है और पत्र उठा लेता है**) मेरे नाम की चिट्ठी, कौन डाल गया यहाँ ? (**लिफाफा खोलकर पढ़ता है**) 'अविश्वास का फल ले गया तुम्हारी स्त्री को।'—मेरे सर्वनाश की एक ही पंक्ति ! विना कारण ही अविश्वास किया क्या मैंने ? (**सिर पीटकर पत्र फाड़ देता है**) अब सन्देह ही क्या रह गया ? वह भाग गई ! भगाने वाला, दिन-दहाड़े ऐसा साहस रखकर मेरी मेज पर पत्र रख गया। (**बेचैनी से कमरे में इधर-उधर घूमकर**) अब कैसे लोगों को मुँह दिखाऊँगा ? सारी दुनिया मुझ पर अँगुली उठाकर कहेगी—'इस मास्टर की औरत भगा दी गई।' हे भगवान् ! (**असहाय होकर कुर्सी पर गिर जाता है**)।

प्रतिबिम्ब—मैं बताऊँ, बदनामी से बचने का बढ़िया रास्ता ? बत्ती जला ले, अँधेरा हो गया ?

विजय—(**बत्ती जलाकर**) पहले यह बता उसे ले कौन गया ?

प्रतिबिम्ब—मैं क्या चौकीदार हूँ ? जाने दे, जो भी ले गया। रोज की चिन्ता गई। हल्ला मचायेगा तो सारे शहर में बदनामी फैल जायेगी। सबसे अच्छा है, कुछ गूदड़ लपेट लाश-गाड़ी में रखकर ले जा श्मशान में, फूंक दे चुपचाप। रात का समय है, कौन देखता है ? लोगों में मशहूर कर दे—वह मर गई ! ऐसे मुँह काला करने वाली क्या कभी जीवित कही जा सकती है ?

विजय—ठीक है ! (**उत्साहित हो उठ जाता है**) बहुत बढ़िया राय दी। मैं भी कुछ इसी के आस-पास सोच रहा था। लेकिन अगर दो-चार दिन, सप्ताह या महीने बाद वह वापस आ गई तो ?

प्रतिबिम्ब—मरकर भी कहीं कोई वापस आता है ?

विजय—(द्वार पर सांकल चढ़ाता है। फिर चारपाई में से एक पुराना लिहाफ निकालता है) यह ठीक है। (उसे लपेटकर गोल करता है) सुजाता, अन्त में तुम इस जड़ता को जा पहुँची ! (भीतर चला जाता है, उस लिहाफ को लेकर)।

[कुछ देर करुण स्वरों में पृष्ठ संगीत बजने के बाद]

विद्यार्थी—(बाहर से द्वार खटखटाकर) मास्टर साहब ! मास्टर साहब !

विजय—(भीतर से आते हुए) अरे, तुम आ गये पढ़ने ? (द्वार खोलता है। बगल में किताबें दबाए विद्यार्थी आता है) लेकिन भाई, आज तो···(बाहर बैठक से भीतर के कमरे में दिखाता है)—यह देखो।

विद्यार्थी—(भूमि पर बँधे पड़े उस कल्पित शव को देखकर घबराता है) मास्टर साहब ! यह क्या ?

विजय—(दोनों हाथों से सिर पीटकर) क्या बताऊँ भाई, मेरी पत्नी की लाश ! स्टोव का एक्सीडेंट ! मैं स्कूल में था। लौटकर देखा तो खाँड के खिलौने की तरह इनके कई टुकड़े भूमि पर छितराए हुए मिले। किसी तरह जोड़कर इन्हें बाँधा है कि बिल्ली-चूहे घसीटकर इनकी दुर्गति न करें। भगवान् की इच्छा !

विद्यार्थी—आप अकेले ही हैं। किसी और को बुला लाऊँ ?

विजय—बुरी घड़ी में अपना कौन है ? फिर रात में किसी को कष्ट देना उचित नहीं। लाश-गाड़ी ले आओ। सब कुछ आसानी से हो जायगा। करना ज़रा जल्दी।

[विद्यार्थी के जाने पर विजय फिर द्वार बन्द कर लेता है]

प्रतिबिम्ब—मास्टर साहब, इतना परिश्रम और जालसाजी करने की ज़रूरत ही क्या थी ?

विजय—अब तुम ऐसा कहने लगे !

प्रतिबिम्ब—मेरा मतलब तुम्हारी दुर्बलता के आरम्भ से है। सबसे बड़ा बन्धन प्रेम का है।

विजय—क्या मैंने उससे प्रेम नहीं किया ?

प्रतिबिम्ब—विश्वास प्रेम का पहला नाम है। लोहे का ताला ही तुम्हारा विश्वास था। वह दूसरी चाबी से खुल जाता है, तोड़ भी दिया जा सकता है।

विजय—प्रेम क्या एकांगी होता है ? उसके लिए नहीं कहते ? कैसा झूठा प्रेम दिखाया उसने ? अवसर मिला तो भाग गई अपने पुराने मित्र के साथ।

प्रतिबिम्ब—डॉक्टर से तुम्हारा मतलब है क्या ? वह बेचारा टी० बी० का बीमार, इसीलिए तो उसने आजन्म अविवाहित रहने का व्रत लिया है।

विजय—झूठी बात ! जात-पाँत का भेद बीच में आ पड़ा। इसी से डॉक्टर का विवाह इसके साथ नहीं हो सका। यही उसकी बीमारी थी और यही उसके कुआँरेपन का कारण। आज उसकी इच्छा पूरी हो गई। तीन शहर फाँदकर हमारे मुहल्ले में दवाखाना खोलने आया था, वह इसीलिए। **(बाहर मोटर का हार्न बजता है)** आ गई क्या लाश-गाड़ी ?

विद्यार्थी—**(द्वार खटखटाकर)** मास्टर साहब, आ गई गाड़ी।

[**विजय द्वार खोलने लगता है।**]

[**पर्दा गिरता है**]

दूसरा दृश्य

स्थान—अगला वन-पथ ।

समय--संध्या ।

[**दौड़ती-हाँफती, हारी-थकी सुजाता आती है और मार्ग में सिर पकड़कर बैठ जाती है । उसका अंचल अस्त-व्यस्त और केश बिखरे हैं ।**]

डॉ० बिसन--(दूर नेपथ्य से कष्ट में पुकारता है) सुजाता ! सुजाता ! ठहर जाओ । इस शून्य वन में केवल अपनी जान बचाकर भाग जाना मनुष्यता नहीं है । यह मोटर का एक्सीडेंट तुम्हारे ही कारण हुआ है । न तुम उसमें से कूदने लगतीं, न ऐसा होता ।

सुजाता—तुम्हारे कर्मों का यह ठीक ही भाड़ा तुम्हें मिला, ऐसा क्यों नहीं कहते ?

डा० बिसन—तुम्हारे व्यवहार से भी कठोर और दुधारे ये शब्द हैं । **(कराहता है)** ओ ऽ ऽ ह ! खेद है, तुम अभी तक मेरे मन के शुद्ध अर्थ को नहीं समझीं ।

सुजाता—तभी समझ गई थी जब तुमने कहा—मास्टर साहब आगे चले गए और इतनी दूर आ जाने पर भी उनका पता नहीं । कितने गम्भीर होकर तुमने मुझे मेरे पिताजी की बीमारी का धोखा दिया !

डॉ० बिसन—(कराहते हुए) मेरी मदद करो । इस उलट गई मोटर के नीचे से मुझे बाहर निकालो, मैं अभी तुम्हारे सारे सन्देह दूर कर दूंगा । मेरा पैर बड़ी बुरी तरह से मोटर के लोहे में दब गया है । सहारा दो, सुजाता, सहारा दो । जरा देर के लिए भी मेरा हाथ पकड़ लोगी तो मैं बाहर निकल आऊँगा ।

सुजाता—नहीं पकड़ सकती मैं तुम्हारा हाथ ।

डॉ० बिसन—क्यों ?

सुजाता—समाज और धर्म का नियम।

डॉ० बिसन—कैसा निर्दय तुम्हारा यह समाज है ? संकट में पड़े हुए मनुष्य को जो जरा हाथ पकड़कर उवार नहीं सकता वह कैसा धर्म है ? यह धर्म का नियम नहीं, यह उसका पाखण्ड है। पाखण्ड पर ठहरा हुआ समाज अधिक दिन तक जीवित नहीं रह सकता। (**फिर कराहता है**) ओ ऽ ऽ ! लो, निकल आया मेरा पैर। मनुष्य की कठोरता पर भगवान् की कृपा ने विजय पाई !

सुजाता—(**उधर देखकर**) क्या ? (**उठकर जाने लगती है**)।

डॉ० बिसन—ठहर जाओ, सुजाता, मुझे भी आने दो।

सुजाता—तुम्हें आने दूं ? दुष्ट !

डॉ० बिसन—निर्जन की इस अनजानी राह से जाना-पहचाना दुष्ट क्या बुरा है ?

[**सुजाता दुविधा में पड़कर रुक जाती है**]

डॉ० बिसन—(**लंगड़ाते हुए वहाँ पर आ जाता है**) वच गया, हड्डी नहीं टूटी।

सुजाता—वच गए ? तुम्हें अपने इस पाप के लिए किसी अंग से दाम नहीं चुकाने पड़े ?

डॉ० बिसन—तुम्हारे पति का अन्धविश्वास तोड़ने के लिए मुझे यह नाटक करना पड़ा और तुम ऐसा कहती हो ?

सुजाता—मैं इस मोटर के नीचे दबकर मर गई होती तो अच्छा था। अपने पति का मंगल चाहने वाली एक नारी का नाम और मान-गौरव नष्ट हो गया ! बिसन, यह क्या कर दिया तुमने ? क्या बिगाड़ा था मैंने तुम्हारा ?

डॉ० बिसन—वह तुम्हें एक अपराधी की तरह नित्य ताले में बन्द

कर चले जाते हैं। मैं जानता हूँ तुम कितनी पवित्र हो। मुहल्ले वाले क्या सोचते होंगे तुम्हारे लिए। यह सहन नहीं हो सका मुझसे। मैं उन्हें यही दिखाने को तुम्हें यहाँ तक ले आया हूँ कि ताले में बन्द होने पर भी तुम इतनी दूर तक बहकाई जा सकती हो?

सुजाता—अगर उनके शक्की स्वभाव ने तुम्हारे इस उद्देश्य को ग्रहण न किया तो?

डॉ० बिसन—करेंगे कैसे नहीं?

सुजाता—मनुष्य का स्वभाव ही तो है। क्या होगा अब? क्या करूँ मैं? ताला खोल कमरे में मुझे न पाकर क्या सोच रहे होंगे वह? बिसन, मेरे जीवन के साथ बड़ा भयानक परिहास कर दिया तुमने यह।

डॉ० बिसन—आध घंटे में हम लगभग बीस मील आए हैं। मोटरकार केवल उलट गई है, उसमें बिगड़ा कुछ नहीं है। अगर किसी उपाय से हम दोनों मिलकर उसे सीधा कर लें तो अगले आध घंटे में मैं तुम्हें घर पहुँचा सकता हूँ। अभी वह स्कूल से वापस भी न आए होंगे।

सुजाता—नहीं, तुम्हारे साथ नहीं। देखने वाले सब क्या कहेंगे?

डॉ० बिसन—मोटर की खिड़कियाँ बन्द कर परदे खींच लिए जायेंगे।

[कुछ दूरी पर रेल की सीटी सुनाई देती है]

सुजाता—रेल की सीटी! **(प्रसन्न होकर अन्तरिक्ष में देखती है)** रेल का स्टेशन! गाड़ी खड़ी है। मैं क्यों न दौड़कर कानपुर की गाड़ी पकड़ लूँ? **(जाने लगती है)** साफ-साफ बता दूँगी उन्हें यह धोखा। जब मैं निष्पाप हूँ तो…

डॉ० बिसन—सुजाता, मैं भी। **(उसका हाथ पकड़ लेता है)**।

सुजाता—तुम्हारे पैर में चोट है, तुम नहीं दौड़ सकोगे। मुझे अकेले ही जाने दो। शायद मैं अब भी अपनी मान-मर्यादा बचा सकूँ।

(डॉ० बिसन के बन्धन से हाथ छुड़ा लेती है) तुम क्यों मेरे शत्रु हो गए ?

डॉ० बिसन—(लड़खड़ाकर गिर पड़ता है) तुममें कुछ भी दया नहीं।

सुजाता—और तुम्हारी दया मेरे लिए विष हो गई। (दौड़कर चली जाती है)।

डॉ० बिसन—(फिर उठकर जाने की कोशिश करता है) नहीं. दौड़ा नहीं जा सकता। (धीरे-धीरे जिधर से आया था उधर ही जाने लगता है) कोई तो इधर से आकर मेरी मोटर सीधी करा देगा। (चला जाता है)।

[पर्दा उठता है]

तीसरा दृश्य

स्थान—विजय की बैठक ।

समय—दिन ।

[**विजय एक पत्र पढ़कर मेज़ पर रख देता है**]

विजय—सबको अपनी-अपनी पड़ी है। असली रहस्य का किसी को पता नहीं। (**कुछ सोचता हुआ कुर्सी पर बैठ जाता है**) महीने-भर से डॉक्टर बिसन सिविल अस्पताल में घायल होकर पड़ा है। उसके मोटर ऐक्सीडेंट की वही रात बताई जाती है तो फिर क्यों न मेरा संशय सच्चा पैर की चोट से मेरे हृदय की चोट क्या कम मर्मांतक है ? उसकी कुशल पूछने के लिए मेरे पैर अस्पताल की ओर बढ़ते ही नहीं तो मैं क्या करूँ ? (**बाहर द्वार पर खटखटाहट**) कौन ? (**उठकर द्वार खोलता है**) आओ डॉक्टर बिसन, नमस्ते !

डॉ० बिसन—(**पैर में प्लास्टर बाँधे हुए लाठी के सहारे आकर**) नमस्ते ! क्या करूँ भाई, आज ही अस्पताल से छूटा ।तुम्हें पत्नी के वयोग का इतना भारी दुःख सहना पड़ा, दो शब्द समवेदना के कहने को भी मैं तुम्हारे पास न आ सका। लेकिन शायद ही तुम्हारी याद के बिना मेरा कोई दिन बीतता हो।

विजय—मैं भी तो नहीं आ सका। क्या हो गया था तुम्हारे पैर में ?

डॉ० बिसन—(**कुर्सी पर बैठते हुए**) मोटर का एक्सीडेंट हो गया था। जान बच गई, मोटर भी। भगवान् का धन्यवाद है।

विजय—(**शंकित होकर उसे देखते हुए**) हाँ, डॉक्टर बिसन !

डॉ० बिसन—सुजाता इस तरह एकाएक तुम्हें छोड़कर चली

जायेगी। किसी का क्या वश चल सकता है, विजय! केवल समय ही तुम्हारे हृदय का घाव भर सकता है।

विजय—समय से पहले शायद समाज द्वारा। (**मेज पर का पत्र उठाकर डा० बिसन को देता है**) गाँव से यह पिताजी की चिट्ठी आई है।

डॉ० बिसन—(**चिट्ठी पढ़कर**) नई बात क्या है इसमें? दूसरा विवाह करना ही चाहिए तुम्हें। मरने वाला केवल जाता है। जीवन रखने के लिए फिर सभी कुछ करना पड़ता है, भाई।

विजय—ठीक है, पहली स्त्री के अशौच के दिन पूरे भी नहीं हुए और दूसरे विवाह की तैयारियाँ होने लगीं।

डॉ० बिसन—वह पवित्र महिला···स्टोव का एक्सीसेंट···और वही रात! मैं अस्पताल में पैर की पीड़ा से कराह रहा था। जब यह भयानक समाचार मेरे कानों में पड़ा तो मेरी सारी पीड़ा भूल गई और मैं उड़कर तुम्हारे पास आने को बेचैन हो उठा।

विजय—(**बड़े सन्देह से उसे देखते हुए**) क्यों ऐसी आवश्यकता आ पड़ी तुम्हें?

डॉ० बिसन—सन्देह से क्यों देखने लगे मुझे?

विजय—क्यों नहीं?

डॉ० बिसन—जन्म के सन्देही तुम! अगर तुम ऐसे न होते तो सुजाता आज भी जीवित होती। तुम उस देवी की महिमा न समझ सके, तभी इतनी जल्दी मर गई वह!

विजय—(**उठ जाता है**) बड़े आश्चर्य की बात है। तुम डाक्टर हो, जीवन और मृत्यु के रहस्य तुम दूसरों की अपेक्षा अधिक सही समझते हो। तुम्हारे मुख से ऐसे कच्चे शब्द!

डॉ० बिसन—(**उठकर लँगड़ाते हुए जाने लगता है**) कुछ भी कहो, विजय।

विजय—**(डाक्टर का हाथ पकड़कर रोक लेता है)** बैठो, बताकर हो जाना होगा तुम्हें। तुम्हारा मतलब क्या है, क्या मैंने जहर देकर मारा है उसे ?

डॉ० बिसन—जहर शायद शान्ति की घूँट होती। तुमने उसे तिल-तिल घुलाकर मारा है। शरीर को जहर इतना तीखा नहीं, जितना आत्मा को। तुम्हारे रोज के सन्देहों की अखण्ड धार से उसकी आत्मा कट चली। उसने जरूर आत्महत्या की है। तुम्हें बदनामी से बचाने के लिए अपनी मौत को स्टोव के एक्सीडेंट में लपेट लिया।

विजय—मित्र, क्या मेरे सन्देह बिना कारण ही उपज गए ?

डॉ० बिसन—कारण ही झूठे हैं। सच्चे कारणों से विश्वास बनता है।

विजय—बड़ी भूल हुई जो मैंने उससे विवाह किया। अगर तुम दोनों की यह बचपन की मित्रता मुझे पहले से मालूम होती तो मैं कदापि इस सम्बन्ध को स्वीकार न करता।

डॉ० बिसन—बड़े दुःख का विषय है, मास्टर, तुम्हारे ये मैले विचार, अगर ये मुझे पहले ज्ञात हो गए होते तो इस मुहल्ले में क्या, मैं इस शहर में ही नहीं आता। **(कुछ सोचकर)** क्यों नहीं मैं इस पेशे का ही त्याग कर देता ?

विजय—पर अब क्या होता है ? होनी हो चुकी !

डॉ० बिसन—हूँ ! **(नाक से स्वर निकालता है)**।

विजय—**(बड़े प्रेम से डॉक्टर के कन्धे पर हाथ रखता है)** एक छोटा-सा परिहास तुम्हें सहन नहीं हो सकता, डॉक्टर। फिर क्यों तुम अपने हृदय की उदारता के लिए प्रसिद्ध हो ?

डॉ० बिसन—**(तुरन्त ही संतुष्ट हो जाता है)** फिर अब क्या विचार हैं तुम्हारे ?

विजय—कैसे ?

डॉ० बिसन—दूसरे विवाह के लिए माता-पिता का अनुरोध ?

विजय—बिना विवाह किए जब तुम्हारी दुनिया घूम सकती है तो क्या मेरी अँधेरी ही रह जायेगी ?

डॉ० बिसन—मेरे माता-पिता नहीं हैं। होते तो शायद···

विजय—कुछ भी हो। फल भोग चुका। मैं तो विवाह अब नहीं करूँगा।

डॉ० बिसन—अवश्य करना पड़ेगा तुम्हें। तुम इसे विष कहो या अमृत, तुम इसके अभ्यासी हो चुके हो। और भी एक कारण है—तुमने पहले विवाह में जो पाप किया है, उसका प्रायश्चित्त तुम्हें दूसरे से करना पड़ेगा। **(भावावेश में मुट्ठी तानता है)**।

[**यवनिका**]

दूसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—सुजाता का पीहर ।

समय—रात ।

[आँगन में तुलसी-मण्डप । उसके एक ओर बाहर जाने का मार्ग, एक ओर नौकरघर और गाय के गोठ का रास्ता । तुलसी-मण्डप पर महावीरजी की मूर्ति । वहाँ एक मिट्टी का दीपक जल रहा है । सुजाता के पिता घंटी बजाते हुए आरती कर रहे हैं । नेपथ्य में गाय रँभाती है ।]

पिता—···मनोजवं मारुत तुल्य वेगम्, जितेन्द्रियम् बुद्धिमतां वरिष्ठम्, अरे, कहाँ गया रे ओ बदरी ! वातात्मजं वानरयूथ मुख्यम्, जब देना ही है तो बिना माँगे क्यों नहीं देता, रे बदरी ! श्रीरामदूतम् शरणं प्रपद्ये । ओ बदरी ! यह रँभा रही है ।

बदरी—(सिर पर एक पूली घास की लेकर बाहर से आता है) आ गया, पिताजी । (द्वार पर साँकल चढ़ा गाय के गोठ को चला जाता है) ।

सुजाता—(बाहर द्वार का साँकल झनझनाकर) द्वार खोल दो ।

पिता—श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये । (आवाज सुनते ही हाथ की आरती नीचे गिर जाती है) कौन ? (घबराकर आरती उठाता है) ।

सुजाता—(बाहर से) मैं हूँ सुजाता, आपकी बेटी

पिता—(आश्चर्य से) मेरी बेटी ! कौन बेटी ?

सुजाता—(**अचकचाकर जहाँ-की-तहाँ खड़ी हो जाती है**) मैं सुजाता हूँ, पिताजी।

बदरी—कानपुर वाली बहन।

पिता—(**क्रुद्ध स्वर में**) कौन कानपुर वाली ? अरे, वह मर गई, तू भी क्या मर गया ?

बदरी—हाँ, पण्डितजी, उनकी तेरहवीं पर मैं उनकी ससुराल गया था।

सुजाता—हैं ! (**सहमकर पीछे को हटती है। फिर पिता की ओर बढ़कर**) चरण छूती हूँ, पिताजी।

पिता—(**लात मारते हुए**) कौन है तू पिताजी कहने वाली ? निकल जा यहाँ से ! जा ! जाती क्यों नहीं ?

सजाता—(**गिरते-गिरते सँभलकर**) मैं आपकी बेटी हूँ। (**रोने लगती है**)।

पिताजी—किसकी बेटी ? कैसी बेटी ? एक ही थी मेरी बेटी, वह मर गई। उसकी तेरहवीं भी हो चुकी। फिर तू कौन है ? (**उसे धक्का देकर गिरा देता है**) जा निकल ! मुझे छूकर अपवित्र कर दिया। अब फिर नहाना पड़ेगा रात को।

सुजाता—(**रोते-रोते**) पिता के मुख से यह क्या सुनती हूँ ? क्या कोई अधिकार माँगने आई हूँ ? बदरी ! तुम हमारे पुराने नौकर हो। पहचानो मुझे, कौन कहता है मैं मर गई ? (**बदरी की ओर बढ़ती है**)।

बदरी—(**हाथ से निवारण करता हुआ पीछे को हटता जाता है**) नहीं, नहीं, मैं नहीं मानूँगा। मैं तुम्हारी तेरहवीं में गया था। मैंने तुम्हारा सराध होते हुए देखा। मैं कैसे कह दूँ तुम जिन्दा हो। किसी दूसरे को ठगना, बदरी नहीं आयेगा तुम्हारे जाल में।

सुजाता--(**पिता की ओर देखकर**) पिताजी, अवस्था के कारण आपकी आँखों की ज्योति कम हो गई और रात के अन्धकार में मुझे देखने की कठिनाई है तो मेरी आवाज से अपना सम्बन्ध पहचानो। (**कोई नहीं बोलता**) लालटेन ले आओ, बदरी, तुम तो बूढ़े नहीं हो। (**निराशा से**) लेकिन लालटेन क्या तुम्हारे मन की कालिख दूर कर सकेगी ? बदरी, मुझे पहचानने से क्यों तुम्हें विरोध है ? अभी पिछले साल ही तो मैं माताजी की बीमारी में यहाँ आई थी।

बदरी--(**द्रवित हो सुजाता की तरफ खिचता हुआ**) पंडित जी, देखिए···(**मिट्टी का दीपक उठाने लगता है**)।

पिता—(**दोनों हाथों से मना करते हुए**) छल ! कपट ! धोखा ! बदरी ! जोर से हल्ला नहीं मचा सकता ? क्यों एक जाली नारी के बहकावे में आ रहा है ? गाँव की तमाम औरतें यहाँ जमा होकर उसके लिए रो गईं। बदरी, तू ऊँघ रहा है क्या ? (**दीपक बुझा देता है**)।

बदरी—नहीं, पंडितजी, आप पूजा-पाठ करने वाले क्या अपनी बेटी के लिए झूठ बोलेंगे ? (**सुजाता को नजदीक से देखकर**) लेकिन दिखाई तो वैसी ही दे रही है, आवाज में भी कोई शक नहीं है। बिलकुल···

पिता—अरे, चुप-चुप-चुप ! क्या बकता है ! नहीं, यह हमारी कोई नहीं है। तेरे चारों आँख-कान धोखा खा रहे हैं। (**उसके एक धौल जमाकर**) अरे मूर्ख, होश में आ।

सुजाता—(**करुण स्वर में**) पिताजी, यह क्या कह रहे हैं आप ? फिर कौन हूँ मैं ?

पिता—मैं क्या जानूं कौन है ? मेरी लड़की नहीं है, सुजाता नहीं है। कितनी सीधी और शीलभरी वह लड़की—ऐसी हो सकती है। वह ? ऐसे मैले वेष में ! अँधेरी रात ! बिना किसी संग-साथ के ऐसे

अकेले ? नहीं, कभी नहीं ! जो दिन में गाँव की ओट जाते हुए डरती थी, इस भयावनी रात में वह कानपुर से काले कोसों यहाँ तक कैसे, बदरी, कैसे ?

बदरी—रेल का रास्ता तो है।

पिता—रेल के रास्ते में क्या साथ नहीं चाहिए ? फिर स्टेशन से दो कोस यहाँ तक जंगल-ही-जंगल !

बदरी—(**एकाएक दूर भागते हुए**) हाँ पंडित जी, अब समझ गया। हटिए-भागिए, यह कोई चुड़ैल है, जो बहन का भेस भरकर हमें धोखा देने आई है। भाग जाइए मकान के भीतर। मैं भी गया गाय के गोठ को। (**भाग जाता है**)।

पिता—कहाँ गया रे मुझे अकेला छोड़कर ? पहले इसे तो घर से निकाल।

सुजाता—(**पिता के पैरों पर गिड़गिड़ाते हुए**) पिताजी, मेरी आप-बीती तो सुन लीजिए दो बातों में।

पिता—नहीं आता रे, बदरी, जो इसने मेरा गला दबा दिया तो ? आ जल्दी से, भैया को भी खबर दे, वह क्या सो गया ?

बदरी—(**भीतर ही से**) यह नहीं जाती तो आप भीतर चले जाइए न। जल्दी से दरवाजा बन्द कर लीजिए। रखा क्या है आँगन में ? एक पुरानी टोकरी, चटाई, हल की फालियाँ, कुदाल और टूटा हुआ गाड़ी का पहिया।

पिता—जा भाग ! नहीं तो मैं देवी का कवच पढ़ता हूँ। क्या हो गया रे, बदरी, बड़ा डरपोक है तू ! भैया से चूल्हे की एक जली हुई लकड़ी माँग ला। मैं मन्त्र पढ़कर अभी इसे भस्म कर देता हूँ। (**कुछ मंत्र गुनगुनाता हुआ उस पर हाथ फेंकता है बार-बार**) प्राच्यां रक्षतु माँ मैंद्री आग्नेयामग्नि देवता, दक्षिणेवतु वाराही नैर्ऋत्यां खड्गधारिणी

प्रतीच्यां वारुणी रक्षेत् वायव्यां मृगवाहिनी, उदीच्यां पातु कौमारी ईशान्यां शूलधारिणी, उर्ध्व ब्रह्माणी मे रक्षेद्धस्ताद् वैष्णवी···ओ३म् हूँ फट् स्वाहा !···नहीं जाती तू ?

सुजाता—कहाँ जाऊँ ? पिता के चरणों में जब शरण नहीं मिलती तो अंधकार-भरी रात में कौन मेरे लिए द्वार खोलेगा ?

पिता—यह ऐसे नहीं जायेगी रे, बदरी ! दोनों भालों को उठा ला। इसका आँगन में रहना भी खतरनाक है। बिलकुल गाँव से बाहर खदेड़ देना होगा।

बदरी—घबराओ नहीं, पंडित जी, भैया से लालटेन ले आने को भी कह दिया है। और क्या-क्या मँगाया है आपने ? **(जाता है)**।

सुजाता—पिताजी, अगर आज मेरी माता मर न गई होती तो मेरी छाया देखकर ही पहचान लेती।

बदरी—(दोनों भाले लेकर आता है) लीजिए, एक भाला आप सँभालिए ! **(पिता को एक भाला देकर)** एक मैं।

सुजाता—दोनों भाले मेरे अंग में गड़ाकर उसके रक्त की धारा में पहचानिए अपनी बेटी को।

पिता—देखता क्या है ? मार भाला, नहीं तो खा जायेगी यह सारे गाँव को।

सुजाता—(आर्त स्वर में पुकारती है) भैया ! भैया ! तुम तो आकर करो सहायता। इस तामसी और ठोकर-भरी रात में मैं कहाँ जाऊँ, किसे पुकारूँ ?

पिता—क्यों तेरी आत्मा अभी इस संसार में मँडरा रही है ? क्या हैं तेरे बन्धन ? कहाँ पर अटकी है तू ? क्या तेरे ससुराल वालों ने ठीक-ठीक तेरे प्रेत-कर्म नहीं किए ? कौन-सी इच्छा अधूरी रह गई ? चाहती क्या है तू ?

सुजाता—मैं आपके खेत खोदकर अपने ग्रास लवा लूंगी। अग सेवकों में जगह दीजिए।

पिता—मैं घर-गृहस्थी वाला अपने घर में प्रेत को कैसे जगह दे दूं! गाँव वाले क्या कहेंगे? यह ऐसे न मानेगी। बदरी, मार भाला।

[**दोनों जमीन पर भाले मारते हैं**]

सुजाता—भैया! भैया! (**पुकारती हुई पीछे को हटती है**)।

पिता—जोर से न चिल्ला। अगर सब गाँव वाले लाठियाँ लेकर आ गए तो तेरी कोई हड्डी न रहेगी साबुत।

[**दोनों भाले मारते हुए सुजाता को दरवाजे तक हटा देते हैं। वह रोती-चिल्लाती है। उसका भैया भीतर से लालटेन लेकर आता है। उसका प्रकाश सुजाता के मुख पर पड़ता है।**]

सुजाता—(**ललकारकर भाई की ओर दोनों हाथ बढ़ाती है**) भैया! भैया!

भैया—(**सुजाता को पहचानकर लालटेन भूमि पर रख देता है। तुरन्त ही पिता का हाथ पकड़ लेता है**) मैं कहता हूँ, तुम्हारी उम्र किधर जा रही है? बदरी, तू भी अन्धा हो गया क्या?

बदरी—(**लाठी दूर फेंक सिमटकर एक ओर खड़ा हो जाता है**) भैया जी, मैंने तो पहले ही कह दिया था।

भैया—(**पिता के हाथ का भाला छीनकर फेंक देता है**) फिर क्या बात हो गई? और अब तो लालटेन भी आ गई। (**सुजाता को पास जाकर उसे प्रणाम करता है**) प्रणाम जीजी! (**उसे सहारा देकर भीतर को ले जाने लगता है**) चलो भीतर।

पिता—(**भैया का हाथ पकड़ अपनी ओर खींच लेता है**) खा जाएगी। नहीं है यह तेरी जीजी।

भैया—मति मारी गई है क्या? कौन कहता है जीजी नहीं है।

(फिर सुजाता के पास चला जाता है)।

सुजाता—वही हूँ, भैया ? पिता जी इतने बूढ़े हो गए क्या ? उनकी आँखों और कानों ने जवाब दे दिया क्या ? और बदरी, उनसे तनखा पाने वाला नौकर, उनकी आँखों के इशारे पर अपने होंठों की आवाज बनाता है। तुम मेरे दुख की कथा सुनो, भैया।

भैया—**(स्नेह के आवेश में उसके दोनों हाथ पकड़कर अपने माथे से लगता है)** जीजी ! कैसे दुर्बल और नीले तुम्हारे हाथ ? कितने ठंडे ? क्या बीमार हो गई थीं ?

सुजाता—हाँ, मौत के मुँह से निकलकर आ रही हूँ।

भैया—मौत के मुँह से ? **(घबराकर उसका हाथ छोड़ पिता की तरफ देखता है)।**

पिता—**(फिर उसका हाथ खींचकर भीतर की तरफ धक्का देता है)** भीतर जाओ। नहीं है यह जो तुम इसे समझते हो।

भैया—फिर कौन है ?

बदरी—भैया, इनकी ससुराल में जब हम दोनों इनकी जगह सूनी देख आए तो फिर क्यों नहीं तुम्हारी अकल जाग उठती ?

भैया—क्या मतलब तुम्हारा ?

बदरी—अरे, तुम इतने बड़े हो गए। माँ जी मर न गई होतीं तो तुम्हारी शादी भी हो गई होती और तुम्हें अभी तक यह नहीं मालूम कि मरने के बाद इन्सान भूत-प्रेतों में बदल जाता है।

भैया—सब झूठी बात ! भूत-प्रेत नाम की कोई चीज नहीं।

बदरी—शहरों में न होगी। गाँव में तो यह सामने ही देख रहे हो।

भैया—**(लालटेन उठाकर सुजाता को सिर से पैर तक देखता है)** बदरी, आँखें फूट गईं तेरी ? देख, पहचान—भूत क्या इतना जीवित और ठोस होता है ? भूतों के पैर उलटे होते हैं। देख जीजी के पैर !

बदरी—पैर तो सीधे ही हैं। लेकिन नंगे, काँटों के छिदे और धूल के भरे। चप्पल कहाँ गई?

भैया—चमड़े को क्या देखता है? आत्मा को पहचान। चलो, जीजी, अगर इन्हें कुछ देने से इनकार है तो मैं अपना हिस्सा बाँट लूँगा तुम्हारे साथ। **(उसका हाथ पकड़ पिता के पास ले जाकर)** पिताजी, मेरा वहम तो चला गया। आप भी अपना वहम दूर कर लीजिए।

पिता—मैं क्या तुम्हारी कच्ची उमर पर खड़ा हूँ? मैंने युगों के आदि-अन्त देखे हैं। मैं किसी को नहीं घुसने दूँगा यहाँ। यह मेरा घर है। यहाँ मेरा कानून चलेगा। **(भीतर का द्वार रोककर खड़ा हो जाता है)**।

भैया—जीजी, तुमने यहाँ आने की सूचना भी नहीं दी। सामान कहाँ है? ऐसे फटे-मैले वेश में कहाँ से आ रही हो?

सुजाता—लखनऊ से।

भैया—लखनऊ क्यों गई थीं?

सुजाता—भूल से गलत रेल में जा बैठी।

भैया—नहीं आई बात समझ में।

पिता—और कभी आ भी नहीं सकती। इसी से कहता हूँ मुँह बन्द करो और उससे पहले घर का द्वार।

भैया—जीजा जी कहाँ हैं?

सुजाता—**(सिर नीचा करती है)** कानपुर ही तो। **(बेचैन होकर)** मेरा सिर चकराता है। **(भूमि पर माथा पकड़कर बैठ जाती है)**।

भैया—कब से तुमने भोजन नहीं किया? तुम बहुत दुर्बल हो गई हो। बदरी, मैं अभी दूध उबालकर रख आया हूँ। एक गिलास-भर दूध ले आ।

[**बदरी भीतर जाने लगता है**]

पिता—(**उसे रोक लेता है**) नहीं, मैं नहीं जाने दूँगा। (**द्वार में बाहर से साँकल दे देता है**)।

भैया—जीजा जी तुम्हारे साथ क्यों नहीं आए ?

सुजाता—कोई मुझे धोखा देकर घर से बुला ले गया।

पिता—अब भेद खुला। ये नए लौंडे इस पुरानी खाल में कोई साँस ही नहीं समझते।

भैया—कितने दिन हो गए ?

सुजाता—हो गया होगा एक महीना। उसके जाल से छूटकर मैं स्टेशन को दौड़ी। लेकिन जल्दी और घबराहट में गलत रेल में बैठकर कानपुर लौटने के बदले लखनऊ पहुँच गई।

पिता—और लखनऊ से यहाँ तक के ये दो कोस—पूरे एक महीने में ? उस महीने का यह काला इतिहास सुनने को मैं तैयार नहीं हूँ।

भैया—मैं सुनूँगा। लखनऊ में कहाँ रह गई तुम इतने दिन ?

सुजाता—भय, चिन्ता, अनाहार और श्रम के कारण मुझे भारी ज्वर आ गया और मैं चेतना खो बैठी। दूसरे दिन जब होश में आई तो मैंने अपने को एक महिला-आश्रम के अस्पताल में पाया।

पिता—नारी का घर से निकल जाना ही उसकी मौत है।

भैया—बहकाई गई नारी दूसरी बात है, पिता जी। चलो जीजी, तुम उतनी ही पवित्र हो। (**हाथ पकड़ उसे भीतर को ले जाने लगता है**)।

पिता—(**बन्द साँकल में ताला देकर**) खबरदार, यह मेरा घर है।

भैया—(**लालटेन से सुजाता के मुख पर उजाला कर**) और यह तुम्हारी लड़की ?

पिता—(**दोनों हाथों से मुँह ढककर**) यह उसका प्रेत है। अपना मुँह काला कर अब हमें कलंकित करने आई है। मैं भुखमरी और महामारी को अपने घर में शरण दे सकता हूँ, लेकिन इसे नहीं, नहीं, नहीं !

सुजाता—(**लौटती हुई**) इस भयानक रात में मैं अब कहां जाऊं ?

भैया—(**हाथ जोड़कर**) पिता जी, केवल एक रात की शरण ?

पिता—(**दोनों हाथ और सिर हिलाकर मना करते हुए**) नहीं, एक क्षण की भी नहीं ।

भैया—(**सविनय**) पिता जी !

बदरी—(**हाथ जोड़कर**) पंडित जी !

पिता—बदरी, तू भी इन्हीं की तरफ हो गया ?—हो जा। (**सुजाता को धक्का देकर**) निकल जा इस कुल की कालिमा, इस घर के अभिशाप ! तेरे सारे सम्बन्ध टूट चुके हैं हमारे साथ। यदि तूने इस गाँव में अपना पीहर और मुझे अपना पिता बताया तो ठीक न होगा। जा तूने जहां अपना मुँह काला किया, वहीं चली जा, सिर ढँककर और होंठ सीकर।

सुजाता—भगवान् सर्वत्र हैं, पिताजी। वह सब जानते हैं। मैंने नारी के धर्म को सुरक्षित ही रखा है। आप जो भी कहें। आपकी दया के विश्वास पर चली आई थी।

पिता—मार्ग में नदी और कुएँ नहीं थे कोई ? रेल की लाइन पर दौड़ता हुआ इंजन भी नहीं ?

सुजाता—(**धोती से आँसू पोंछती हुई**) हे भगवान् ! (**धीरे-धीरे बाहर को पैर बढ़ाती है**)।

बदरी—पण्डित जी, बहन को पहचानने में कोई भूल न होनी चाहिए।

भैया—पिता जी, बिना अपराध के ऐसा कठोर दण्ड !

पिता—चुप रहो, चांडालो ! अगर तुम इस पर दया करना चाहते हो तो जाओ, अभी इसी घड़ी इसके साथ चले जाओ !

भैया—(**बदरी की तरफ देखकर**) बदरी !

बदरी—(**पण्डित जी की तरफ बढ़ते हुए**) हाँ, भैया, जन्म-भर नमक खाया है।

पिता—मैं तुम दोनों के लिए भी अपने घर के द्वार बन्द कर सकता हूँ। अकेले ही मैं अपनी शेष यात्रा पर जा सकता हूँ। विना दवा-पानी और सहायता-सहारे के ही छटपटाकर मैं अपनी आखिरी घड़ी काट लूंगा।

भैया—पिता जी, यह आप क्या कहते हैं ? मैं आपके बुढ़ापे की लाठी हूँ।

पिता—मैंने तोड़कर फेंक दिया उसे। मैं अपनी सम्पत्ति का उत्तराधिकार किसी संस्था में चढ़ा दूंगा। मैं अपना पिंड जीते-जी स्वयं ही वहा लूंगा। कपूत के होने से निपूत होना कहीं अच्छा है।

बदरी—भैया जी, सोच-विचारकर काम करने से न घर में झगड़ा होता है, न वाहर हँसी।

भैया—(**पिता के पास लौटकर आता है**) पिता जी, जीजा जी को चिट्ठी लिखकर…

पिता—(**उसके होंठों पर हाथ रखकर**) अरे चुप, चुप, चुप !

[**सुजाता बाहर को जाती हुई द्वार पर खड़ी हो गई थी। फिर भीतर लौट आती है।**]

पिता—(**गरजकर**) फिर क्यों लौटती है ?

बदरी—खाना खिला दें ?

सुजाता—आपके पैर छूना भूल गई थी। (**पिता के पैर छूने लगती है**)।

पिता—दूर हट कलमुखी ! (**उसे धक्का देकर आँगन के बाहर कर देता है**) तेरे मैले स्पर्श से मेरे सात पुरखे नरक में डूब जायेंगे। (**भैया से**) द्वार बन्द कर सांकल चढ़ा दे।

भैया—पिता जी, हमारा यह भयानक पाप…

पिता—बदरी, यदि तू मेरा स्वामिभक्त सेवक है तो निकाल बाहर कर इस पिता के द्रोही को।

[बदरी द्वार बन्द कर उसमें सांकल चढ़ा देता है]

भैया—जीजी के जीवित होने का सपना तोड़ दिया तुमने !

पिता—चुप रहो, इतने दिनों से दुनिया जिसे मर गई समझती चली आ रही है, उसके विश्वास को वैसा ही रहने दो।

भैया—**(जोर से)** जीजी ! जीजी !

बदरी—चली गईं दूर, बहुत दूर !

भैया—कैसी डरावनी और अँधेरी रात में !

पिता—और भी गहरी है उसके पापों की कालिमा। मिट जाने दो, घुल जाने दो, खो जाने दो उसको इसी में। **(भीतर के द्वार का ताला और साँकल खोलने लगता है)।**

भैया—इस तरह बहकाई गई नारी को जो अपवित्र समझता है उस समाज की कालिमा सबसे गहरी है। यदि उसने ऐसी नारी का आदर करना न सीखा तो एक दिन सारा हिन्दुत्व डूब जायेगा इस अत्याचार में।

[पर्दा गिरता है]

दूसरा दृश्य

स्थान--विजय का बरामदा।

समय--दिन।

[एक चप्पल, कैमरा, पर्स और सनशेड लेकर डॉक्टर बिसन आता है।]

डॉ० बिसन--(इधर-उधर देखकर किसी को न पाकर) अरे, कोई है ?

बदरी--(भीतर से आते हुए) कौन हो जी ? क्या काम है ?

डॉ० बिसन--तुम नये आदमी जान पड़ते हो ?

बदरी--नया आदमी ? खूब कही ! शहर का आदी नहीं हूँ तो क्या गाँव में उमर को सूरज की किरणें नहीं पकातीं ? दो बीसी तीन बरस का हूँ मैं और तुम कहते हो—नया आदमी है। (जेब से तम्बाकू की पत्ती निकालकर तोड़ता है और हथेली में रखने लगता है)।

डॉ० बिसन—मेरा मतलब है, यहाँ नये आए हो।

बदरी—सो तो ठीक है। अब मैं तुम्हें अच्छी तरह समझा देता हूँ। (डॉक्टर के कान में मुँह देकर) मैं इनकी पुरानी ससुराल से आया हूँ। इनकी नई शादी पर कुछ कपड़े-जेवर, एक बोरा गेहूँ, एक टीन घी और कुछ नकदी भी लाया हूँ। हमारे पंडित जी बूढ़े हो गए, पूजा-पाठ अधिक करने लग गए अब। शहर में मन नहीं लगता उनका। कुछ दिन से तो एकदम फकीरी छा गई है उनके मिजाज में। उसका सबब भी है, जो हर एक को बताया भी नहीं जा सकता। उनका बेटा खेती-बाड़ी का इन्तजाम करता है। आजकल फसल के दिन हुए, इसलिए मुझे ही आना पड़ा। (चूना मिला, अंगूठे से सुरती बनाने लगता है)।

डॉ० बिसन—बारात में भी गए थे क्या ? कैसी धूमधाम रही ?

बदरी—शादी यहाँ से थोड़े हुई, गाँव से हुई थी। हाँ, मैं गया था बारात में। इन्होंने तो दूसरी शादी होने की वजह से मुकुट भी नहीं बाँधा, हल्दी भी नहीं लगाई, लेकिन लड़की की तो पहली ही शादी थी। उसके पिता ने कोई कसर नहीं की। तुम्हें नहीं था क्या न्योता ?

डॉ० बिसन—लेकिन मैं एक खतरनाक बीमार की देख-रेख छोड़कर कहीं जा भी तो नहीं सकता था।

बदरी—**(बड़े ध्यान से सिर से पैर तक डॉक्टर को देखकर)** तुम डॉक्टर हो क्या ?

डॉ० बिसन—हाँ, कहाँ हैं मास्टर साहब ?

बदरी—रात में तो गाँव से आए हम लोग। फिर वह बड़ी देर तक अपनी नई बहू को पुरानी गिरस्ती समझाते रहे होंगे। मैं जाकर जगाता हूँ उन्हें। **(जल्दी से भीतर जाकर एक कुर्सी ले आता है)** आप बैठिए, डाक्टर साहब। मेरी बीमारी भी तो बताइए क्या है ? **(उसकी तरफ अपना हाथ बढ़ाता है)** आपकी वह दिल का हाल बताने वाली नली कहाँ है ?

डॉ० बिसन—मेरे दवाखाने में आना। यहाँ तो मैं अपने काम से आया हूँ।

बदरी—क्या काम है तुम्हारा ? **(सुरती का चूना ताली बजाकर झाड़ता है)**।

डॉ० बिसन—मास्टर साहब मेरे दोस्त हैं। उनकी शादी में नहीं जा सका मैं। बहू के लिए अपनी तरफ से यह भेंट लाया हूँ। कैसी हैं वह ?

बदरी—क्या मतलब है तुम्हारा ?

डॉ० बिसन—जो चीजें लाया हूँ, उनको बरतेंगी वह ? पहली बहू

की तरह पढ़ी-लिखी हैं वह ?

बदरी—पहली बहू ननिहाल में रहने से पढ़-लिख गई थीं—लखनऊ में। (**एकाएक कुछ याद कर डरता है**) डॉक्टर साहब, तुम्हें जरूर मालूम होगा। मैं पूछता हूँ, क्या भूत-प्रेत भी कोई चीज होते हैं। अगर होते हैं तो क्या कभी वे शहरों में भी चले आते हैं ? कभी उनकी ज्यों-के-त्यों या बीमार के रूप में आपसे मुठभेड़ भी हुई है ? सुरती खाओगे ?

डॉ० बिसन—साफ-साफ कहो। मैं नहीं समझा तुम्हारी बात।

बदरी—खुद इतने दिनों से मैं भी नहीं समझ पा रहा हूँ। देखो कहता हूँ। जरा देख लूँ, वे अभी उठे या नहीं। (**भीतर चला जाता है**)।

[**डॉ० बिसन सनशेड खोलता और बन्द करता है। फिर कुर्सी में बैठा-बैठा सिगरेट जलाकर पीने लगता है।**]

बदरी—(**आकर धीरे-धीरे कहता है**) डॉक्टर साहब, बात अभी थोड़े ही दिनों की है। इनकी पहली औरत हमारे पंडित जी की लड़की, जानते हो तुम उन्हें ?

डॉ० बिसन—हाँ-हाँ, क्यों नहीं ? कहे चलो।

बदरी—कहूँ तो कैसे ? न कहूँ तो इतने दिन से दम घुटा जा रहा है। इनकी पहली बहू, हमारे पंडित जी की लड़की, वह मर गई ना ?

डॉ० बिसन—हाँ, फिर क्या हुआ ?

बदरी—तुम इसी मुहल्ले के हो, पहले बताओ ना, वह मर गई ? तुम डॉक्टर हो, तुम ठीक-ठीक बताओगे। वह मर गई ?

डॉ० बिसन—हाँ, मर गई।

बदरी—मौत के बाद ? (**इधर-उधर दौड़ता है**) ओह ! मौत के बाद ? (**दौड़ते हुए भीतर चला जाता है और तुरन्त ही फिर बाहर आ**

जाता है) हाँ, मौत के बाद—वह एक रात को चलती-फिरती, बोलती-चालती चली आई अपने पिता के पास, तुम्हारी डॉक्टरी की किसी किताब में ऐसा भी लिखा है ? मरने तक बचा भी सकते हो तुम जिसका दाना-पानी होगा। मौत के बाद क्या किसी की एक अंगुली भी जिला सके तुम ?

डॉ० बिसन—(**चकित होकर कुर्सी पर से उठ जाता है**) यह कौन चली आई कहते हो तुम ?

बदरी—अभी नहीं उठे वे, बैठिए कुर्सी पर। चली आई वही सुजाता बहन और कौन ? हमारे पंडित जी की लड़की और तुम्हारे मास्टर साहब की बहू। जो यहाँ जल मरी थी, जिसकी यहाँ तेरहवीं हो चुकी थी, वही पैदल अपने पैरों से हमारे घर चली आई। सिर्फ आई ही नहीं, वह रोई-धोई, कुढ़ी-कलपी, चीखी-चिल्लाई। लेकिन पण्डित जी ने एक रात की भी शरण नहीं दी उसे, न एक बूंद पानी की दी उसे, न एक छिलका रोटी का।

डॉ० बिसन—यह क्या बक रहे हो तुम ? (**फिर कुर्सी पर बैठ जाता है**)।

बदरी—भगवान् की सौगन्ध ! वह भूत हो सकती है, लेकिन मेरी बात झूठ नहीं। देखूं तो सही वे अभी तक भी नहीं उठे क्या ? (**भीतर चला जाता है**)।

डॉ० बिसन—वह क्या बक गया ? सुजाता की मृत्यु पर मेरे मन में जो काला पर्दा पड़ा था, उस पर नया चित्र प्रकट कर देने वाला यह कैसा रहस्य है ?

बदरी—(**फिर लौट आता है**) डॉक्टर साहब, बड़ी गलती हो गई मुझसे। वह सब ऐसे ही बक गया। माफ करना, उसका कोई ख्याल न करना।

डॉ० बिसन—(**खीभकर**) क्या कोई नशा करते हो तुम ? आने दो मास्टर साहब को।

बदरी—(**डॉक्टर के पैरों पर गिरकर**) तुम्हारे चरणों पर पड़ता हूँ, डॉक्टर साहब, सेवक को माफ करो। उनसे कुछ मत कहना। पंडित जी ने मुझसे किसी से भी न कहने की कसम खिला दी थी। सिर्फ यह सुरती खाता हूँ और कोई नशा नहीं करता। आपके सामने मेरे मुँह से बात निकल पड़ी, न जाने क्यों ? आपके हाथ जोड़ता हूँ, मास्टर साहब से कुछ न कहना ; नहीं तो उनके और उनकी नई बहू के मन में बड़ा खटका हो जायेगा। (**फिर डॉक्टर के पैरों पर गिर पड़ता है**)।

डॉ० बिसन—उठो, उठो, कोई आ जायेगा तो क्या कहेगा ? ऐसी बे-जड़-बुनियाद की बातें क्या यों ही किसी से कह दी जाती हैं ? न-जाने कैसे आदमी हो तुम ?

बदरी—थर्मामीटर लगाकर पहले ही देख लेने को कहा न था मैंने ?

डॉ० बिसन—जरूर देखना ही पड़ेगा।

बदरी—(**भीतर की तरफ देखकर**) आ गए।

विजय—(**आते हुए**) नमस्ते, डॉक्टर साहब। (**खाँसता है**)।

डॉ० बिसन—(**उठकर उसे हाथ जोड़ता है**) तुमने तो विवाह का न्योता भी नहीं दिया। स्वयं आकर तुम्हें बधाई देना अपना कर्त्तव्य है।

विजय—इसे विवाह कौन कहता है ? फिर जबर्दस्ती मेरे गले में यह फाँसी का फन्दा जोड़ दिया गया। क्या तमाशा देखने बुलाता किसी को ?

डॉ० बिसन—कोई विरोध नहीं किया, बढ़िया बात ! पुराने पापों का प्रायश्चित्त होता नहीं तो कैसे ?

विजय—पुराने पाप कैसे ? (**फिर खाँसता है**) ।

डॉ० बिसन—उस देवी का वह आजन्म कारावास ! अब इन्हें विश्वास देकर ही उस पाप को धो सकोगे । अविश्वास आसुरी सम्पत्ति है । लो, तुम्हारी पत्नी के लिए उपहार लाया हूँ । ये उनकी मुक्ति और बहिर्मुखी प्रगति के प्रतीक हैं—चप्पल, कैमरा, सनशेड और पर्स ।

विजय—तुम स्वयं ही दो न उन्हें । चलो भीतर ।

डॉ० बिसन—नहीं, इस तरह बिना सूचना दिए वहाँ चले जाने से उन्हें बड़ी असुविधा हो जायेगी । शिष्टाचार के बिलकुल विरुद्ध !

विजय—अच्छा, मैं उन्हें यहीं बुला लाता हूँ । (**भीतर जाता है**) ।

डॉ० बिसन—(**स्वगत**) मेरी विचारणा में एक विचित्र उथल-पुथल कर दी इस नौकर ने । नहीं, उसके दिमाग की कोई खराबी नहीं है, न मेरा भूत-प्रेतों में विश्वास । नहीं, सुजाना नहीं मरी है । मेरे विश्वास में वह मरकर जी उठी है । वह विजय का तिरस्कार पाकर जरूर पिता के घर गई । वहाँ से फिर कहाँ ? (**कुर्सी पर बैठ जाता है**) ।

बदरी—(**आकर**) क्यों, डॉक्टर साहब, अभी तक उसी बात को सोच रहे हो ? सोच सकते हो चाहे जितने दिन तक लेकिन अगर किसी से भी कह दिया तो···

डॉ० बिसन—एक बात का जवाब दो, पिता ने क्यों शरण नहीं दी अपनी बेटी को ?

बदरी—भूत को कौन दे सकता है जगह ? फौलाद की छाती चाहिए ।

डॉ० बिसन—क्या कहा उससे ?

बदरी—भूत क्या कहना मानते हैं ? लाठियों से मारकर भगा दिया ।

डॉ० विसन—वह कहाँ गई ?

वदरी—मैं क्या जानूँ, कहाँ गई ? भूत-प्रेतों का क्या ठिकाना ?

डॉ० विसन—(**गम्भीर होकर**) वह चली गई। मैं जानता हूँ। वह चली गई, हिन्दू धर्म के पापों का इतिहास लिखने; वह चली गई, उसके कोढ़ के कीटाणु बनने के लिए; वह चली गई, उसकी समाधि खोदने के लिए।

वदरी—तुम भी भूत-प्रेतों को मानते हो ?

डॉ० विसन—नहीं।

वदरी—जब तक सबूत मिलते हैं, मानना ही पड़ेगा। तुम अब जाओगे नहीं ? तुम्हारी बातें खतम नहीं हुईं क्या ? मुझे एक ऊँची कुर्सी चाहिए रस्सी ऊपर बाँधने को।

[**डॉ० विसन उठ जाता है। वदरी कुर्सी उठा ले जाता है। विजय अपनी नई पत्नी रेखा के साथ आता है।**]

विजय—(**पत्नी का परिचय देते हुए**) यह मेरी पत्नी रेखा है। (**डॉ० विसन को दिखाकर**) यही मेरे मित्र डॉक्टर विसन हैं। निकट ही इनकी फार्मेसी है।

[**दोनों एक दूसरे को हाथ जोड़ते हैं**]

डॉ० विसन—विवाह के इस मंगलमय अवसर पर मैं आप दोनों को वधाई देता हूँ और भविष्य-जीवन के लिए शुभ-कामनाएँ प्रकट करता हूँ।

विजय—हम दोनों इसके लिए आपके ऋणी हुए।

रेखा—चलिए न भीतर।

डॉ० विसन—(**हाथ जोड़कर**) आज नहीं, फिर कभी हाजिर होऊँगा। (**रेखा को चारों चीजें देते हुए**) मेरी यह क्षुद्र भेंट

स्वीकार कीजिए। ये सब बाहरी जगत से सम्बद्ध करने के लिए हैं। क्योंकि···

विजय—देखो मित्र, मेरी नई पत्नी अभी अपने नए घर में आई हैं। उनके सामने सोच-समझकर ही तुम्हें मुँह खोलना चाहिए। तुम्हारा कोई भी विकृत शब्द उन्हें गलत मार्ग दे सकता है। **(खाँसता है)** क्खूः क्खू !

डॉ० बिसन—मैं डॉक्टर हूँ। रोग की दवा करने से पहले मेरा कर्त्तव्य है रोग को न होने देना। नारी को घर की बन्दिनी बना देना बड़ा अधर्म है। सुजाता शुद्ध हवा और व्यायाम के अभाव में ही चल बसी।

विजय—हाँ-हाँ, अब जैसा कहोगे वही किया जाएगा। चलो, मैं भी चलता हूं तुम्हारे साथ। **(डॉक्टर का हाथ पकड़कर बाहर को जाते हुए)** गले में कुछ खराश हो गई है।

[दोनों बाहर चले जाते हैं]

रेखा—लेकिन मैंने कुछ और सुना है। डॉक्टर साहब को झूठ बोलने से कोई मतलब नहीं। **(गम्भीर होकर सोचने लगती है)** स्टोव का एक्सीडेंट बताकर जरूर मुझसे कोई बात छिपाई जा रही है।

बदरी—**(कुर्सी लेकर आता है)** चले गए क्या डॉक्टर साहब ?

रेखा—तुम बता सकते हो मुझे ठीक-ठीक। इनकी पहली घरवाली को क्या बीमारी हो गई थी ?

बदरी—बीमारी ? स्टोव के फट जाने से उनकी एक-एक हड्डी बिखर गई। तभी तो···**(मुँह पर दोनों हाथ रख लेता है)**।

रेखा—तभी तो क्या ? तुम्हें सच-सच बताना ही पड़ेगा।

बदरी—लेकिन और तीसरे आदमी से कहने की बात नहीं है। कसम खानी पड़ेगी।

रेखा—नहीं कहूँगी किसी से। वताओ तो सही।

वदरी—यहाँ कोई सुन लेगा। भीतर चलो।

[कुर्सी लेकर आगे-आगे चलता है। रेखा उसका अनुसरण करती है।]

[पर्दा गिरता है]

तीसरा दृश्य

स्थान—विजय की बैठक।

समय—दिन।

[विजय दैनिक पत्र पढ़ रहा है। रेखा भीतर से आती है]

रेखा—इतवार का आज यह अवकाश। कहीं जाना तो नहीं है तुम्हें ?

विजय—निश्चय तो कुछ नहीं। (अखबार को अलग रख देता है)।

रेखा—तब मैं हो आती हूँ पड़ोस में कुछ देर के लिए। वे कई वार आ चुकी हैं। उनकी भेंट वापस न करना अनुचित बात है।

विजय—अवश्य जाना चाहिए।

रेखा—इधर ही से जाऊँगी, तुम भीतर से बन्द कर लो।

विजय—बाहर से ताला लगाकर चली जाओ। मैं जाऊँगा तो इधर ताला लगा लूंगा।

[रेखा भीतर के रास्ते चली जाती है। विजय फिर अखबार उठाकर पढ़ने लगता है। सुजाता धीरे-धीरे डरते हुए बाहर का द्वार खोलकर प्रवेश करती है। उसके मैले-फटे कपड़े और दीन-मलीन मुख है। वह चुपचाप आकर विजय के सामने खड़ी हो जाती है और उसका ध्यान आकृष्ट करने के लिए कराहती है—अं SSS !]

विजय—(अखबार हटाकर देखता है। एकाएक जो उसकी नजर सुजाता पर पड़ती है तो चौंक उठता है, फिर तुरन्त ही संयत हो जाता है) कौन है ? कहाँ चली आई ?

सुजाता—(दोनों हाथ छाती पर रखकर बड़े आग्रह से) पहचानते क्यों नहीं ? (बड़ी विनय के साथ) मैं सुजाता हूँ।

विजय—(**अखबार फेंक उठ खड़ा हो जाता है**) कौन सुजाता ?

सुजाता—तुम्हारी सुजाता। अग्नि को साक्षी कर जिसे अपना बनाया था, वही सुजाता।

विजय—अग्नि को ही समर्पित कर चुका हूँ वह धरोहर।

सुजाता—(**तीक्ष्णता के साथ**) तुम्हारे कहने का मतलब ?

विजय—यही कि सुजाता मर चुकी है।

सुजाता—और मैं ?

विजय—क्या जानूं कौन हो ? तन और कपड़ों में राह की एक भिखारिन जान पड़ती हो, मन और वाणी से सौ प्रतिशत एक पगली।

सुजाता—(**विजय के पैरों में गिरकर**) मैं तुम्हारे चरणों की दासी हूँ। एक मास के प्रवास से निश्चय ही मेरा बाहरी ढाँचा निःशक्त और मलिन हुआ है, पर भीतरी आत्मा उतनी ही स्वच्छ है। निश्चल जल की तरह उसमें तुम्हारा प्रतिविम्ब स्पष्ट और पवित्र है। मैं जगत का जो अनुभव लेकर लौटी हूँ, उससे तुम्हारा प्रेम कई गुना सत्य और सुन्दर हो उठा है। (**घुटने टेक हाथ जोड़ती है**)।

विजय—(**उसके हाथ पकड़ एक ओर को गिरा देता है**) बड़ी वाचाल कौन है तू ? जा, निकल यहाँ से !

[**सुजाता भीतर जाने लगती है**]

विजय—(**उसे रोककर**) उधर कहाँ जाती है ?

सुजाता—नहा-धोकर साफ कपड़े पहन लेती हूँ अपने। तब पहचान लोगे तुम।

विजय—खबरदार ! वहाँ मेरी पत्नी है। तेरी जिन बातों को मैं चुपचाप सहन कर गया, उन्हें न पचेंगी वे।

सुजाता—पत्नी ? तुम्हारी पत्नी ? तुमने दूसरा विवाह कर लिया ? इतनी जल्दी मेरी स्मृति मिटा दी ? कोई चिन्ता नहीं। कोई अपमान

न समझूंगी। मैं इसमें भी राजी हूँ। लेकिन मुझे शरण दो, मुझे दूर न करो। (फिर विजय के पैरों पर पड़ती है)।

विजय—(उसे लात मारकर) दूर हट, कलंकिनी ! (उसे धक्का देता है)।

सुजाता—(बड़ी तेजस्विता के साथ) कौन-सा कलंक ? कैसी कलंकिनी ?

विजय—जल्दी में यह एक दूसरा ही शब्द मेरे मुँह से निकल गया, फिर भी मेरी बात ठीक ही है। किसी के घर आकर तू यह जैसी बातें कर रही है, वह तेरा कलंक नहीं तो और क्या है कुलटे !

सुजाता—यह किसी का घर है ? मेरी एक फोटो थी यहाँ कहीं पर रखी हुई। (इधर-उधर देखती है) नहीं दिखाई देती। उसे लाकर मेरी आकृति से मिला लो।

विजय—दो सूरतों में धोखा हो सकता है।

सुजाता—किसी पड़ोसी को बुलाकर निर्णय करा लो।

विजय—सब पड़ोसी जानते हैं, मैं अपनी स्त्री को श्मशान में फूंक आया। तेरी कोई चालाकी इन पर न चलेगी।

सुजाता—सच है। भूले हुए को याद दिलाई जा सकती है, लेकिन जो जान-बूझकर भूल रहे हैं, उनकी कोई दवा नहीं है। तुम पर मेरा अटूट प्रेम है। अपने किसी भी स्वार्थ के लिए मैं तुम्हें पड़ोसियों में बदनाम न करूंगी। तुमने जैसे भी मुझे मारा है मैं उसी तरह मरी पड़ी रह जाऊँगी। एक टूटे हुए बर्तन और जीर्ण कपड़े के समान मुझे इस घर में किसी अँधेरे और सीलन-भरे कमरे में तो रहने दो—विस्मृत और विसर्जित !

विजय—मैं कहता हूँ, तू चुपचाप चली जा। अगर कहीं मेरी पत्नी आ गई तो तेरी हड्डी-पसली सबकी चटनी बन जायेगी।

सुजाता—आ जाने दो। मैं उनके दर्शन करूँगी। मैं अपना कोई अधिकार न मागूँगी उनसे। सब-कुछ उन्हीं को सौंप दूँगी तो फिर कैसे कलह होगा उनसे? किसकी कन्या है वह? सुन्दरी है, पढ़ी-लिखी है। खाना अच्छा बनाती है? स्वभाव की मधुर है? तुम्हारी आवश्यकता की चीजें ठीक समय और स्थान पर तुम्हें मिलती तो हैं? मुझे दिखा दो उसे, मेरी आँखों की प्यास बुझा दो। मैं नहीं बताऊँगी, मैं उसकी सौत हूँ। तुम्हारी मानी हुई मौत पर मैं जीवित न होऊँगी। मुझे शरण दो, मुझ पर दया करो।

विजय—तू ऐसे न जाएगी। मैं अभी पुलिस को फोन करता हूँ।

सुजाता—नौकरानी बनाकर रख लो। मैं मुँह बाँध लूँगी। किसी से भी अपने जीवित रहने की बात न कहूँगी।

विजय—तू मरी या जीवित जो भी है। मेरा यश गा चाहे बदनाम कर, मुझे इसकी कुछ भी चिन्ता नहीं है।

सुजाता—मौत के बाद भी जो जीवित रहना चाहती हूँ, यह तुम्हारी ही सेवा के लिए तो।

विजय—(**भीतर की तरफ कुछ सुनकर एकाएक एक बेंत उठाकर तानता है**) तू सीधे मुँह न मानेगी, चल निकल! (**उसे धक्का देकर बाहर निकाल देता है**) निकल चुड़ैल! (**द्वार बन्द कर उसमें सांकल दे देता है**)।

रेखा—(**भीतर से आती है**) क्यों, क्या हल्ला हो रहा था अभी यहाँ?

विजय—हाँ रेखा, बड़ी सावधानी से रहना। अच्छी तरह समझ-बूझकर ही किसी के लिए द्वार खोलना। शहर में एक पगली घूम रही है। जो मन में आता है, वही बक रही है। (**हँसने लगता है**)! हँ हँ-हँ! (**ताली बजाता है**)।

रेखा—क्यों ? क्यों ? हँसने क्यों लगे ?

विजय—हँ-हँ-हँ ! अभी यहाँ आई थी। उसी की बातें याद कर हँसी आ रही है। हँ-हँ-हँ !

रेखा—हँसते ही रहोगे या कुछ कहोगे भी !

विजय--मुझसे कहने लगी—'मैं तुम्हारी पहले विवाह की स्त्री हूँ।' अर्थात् तुम्हारी सौत ! समझीं ?

रेखा—(**कुछ देर अवाक् खड़ी रहकर होंठों पर अंगुली रखती है**) अजीब औरत है !

विजय—बोली—'मुझे यहाँ रहने को जगह दे दो।' बड़ी मुश्किल से उसे निकाल बाहर किया।

रेखा—मुझसे भी तो भेंट करा दी होती।

विजय—विचार आया तो था। फिर सोचा, पागल के साथ अपने भी पागल बन जाने से क्या लाभ ? द्वार खुला मिल जाने पर वह कहीं तुम्हारे पास न आ जाय। मैंने तुम्हें सावधान कर दिया है। अस्त-व्यस्त रूखे केशों में, मैले और फटे वस्त्र, दुबली-पतली ! लापरवाही से द्वार खुले न छोड़ देना, न उसकी बातों में फँसकर ही कभी खोल देना।

रेखा—तुम गए नहीं कहीं ?

विजय—जाता कहाँ से ? वही आ गई। अब जाऊँगा कुछ देर डॉक्टर के दवाखाने तक।

रेखा—जुकाम कैसा है ?

विजय—अब तो ठीक है। लो, होशियारी से द्वार बन्द कर लो।

[**विजय बाहर जाता है। रेखा भीतर से द्वार बन्द कर लेती है।**]

रेखा—बदरी ने जिस भूत का वर्णन दिया, पड़ोसी जो-कुछ कहते हैं और इनकी पहली पत्नी का रूप रखने वाली यह पगली—इन तीनों

के मेल से मेरे मन में एक अजीब चित्र बनता है। (**अचानक भीतर की तरफ कान देकर**) कोई द्वार खटखटा रहा है। आई ऽ·······कौन है ? (**भीतर चली जाती है और कुछ ही देर में सुजाता का हाथ पकड़कर लाती है**)।

सुजाता—इतनी ममता से मेरा हाथ पकड़कर तुम अपने भीतर ले आई हो। बड़ा भरोसा जाग उठा, मेरे और फिर जीने की इच्छा हो गई। मेरा परिचय भी तो नहीं पूछा। ऐसे दीन-हीन वेश का !

रेखा—वेश से क्या होता है ? तुम्हारे मुख और वाणी में जो संस्कार मिले हैं, वे अपनी प्रतीति आप हैं। कहाँ देखा है तुम्हें ?

सुजाता—यहीं देखा होगा। मेरी देह के दूसरी जगह रहने पर भी आज इतने दिनों से मेरी आत्मा यहीं मँडरा रही है।

रेखा—बताती क्यों नहीं ? मेरे मन में बेचैनी बढ़ा रही हो ? कौन हो तुम ?

सुजाता—तुम्हारी दीदी।

रेखा—मेरी दीदी कोई भी नहीं, जिसे मैंने अब तक न देखा हो।

सुजाता—तुम्हारी सौत।

रेखा—मेरी सौत ? (**कुछ पीछे हटकर**) अभी कुछ देर पहले तुम यहाँ आई थीं ?

सुजाता—कोई बनावट पा रही हो क्या तुम मेरी बातों में ?

रेखा—बनावट कैसी ? (**फिर कुछ और पीछे को हट जाती है**)।

सुजाता—फिर क्यों पीछे को हट रही हो ? (**दुर्बलता से भूमि पर बैठती-बैठती फिर उठ जाती है**) तुम्हारे मन में भी क्या मेरी मौत का विश्वास है ?

रेखा—तुम कई दिनों की भूखी जान पड़ती हो। कुछ खा लो पहले।

सुजाता—नहीं, पहले तुम्हारा अविश्वास मिटा दूंगी, फिर भूख। भूख की ज्वाला इतनी भीषण नहीं, जितना किसी का संशय।

रेखा—(**एकाएक विचारों में बदलकर**) बुरा मानने की बात नहीं है। सारा नगर जिसे मरा हुआ कहता है, उसे जीवित कैसे मान लूं? (**बाहर का द्वार खोलकर**) इस समय तुम जाओ, फिर आना, जीजी!

सुजाता—अब न जाऊँगी। तुमने जीजी कह दिया और मैं जी उठी हूँ। द्वार बन्द कर दो। मैं अभी सिद्ध कर दूंगी कि मैं मरी नहीं हूँ। (**स्वयं द्वार बन्द कर सांकल चढ़ा एक कुर्सी में बैठ जाती है**) यहाँ मेरी एक फोटो थी। जान पड़ता है, वह फाड़कर फेंक दी गई। दूसरी इस सन्दूक में है। यदि वह भी वहाँ से हटा नहीं दी गई है तो वह मेरी साक्षी देगी।

रेखा—(**सन्दूक में से फोटो निकालकर मिलाती है**) है तो सही। कुछ कष्टों के सहन करने से तुम्हारा मुँह दुवला पड़ा है, पर इस फोटो से तुम्हारी एकरूपता सहज ही पहचानी जा सकती है।

सुजाता—और भी तो इसी सन्दूक में मेरी एक कापी है। उसमें मैंने स्त्रियों के कुछ लोक-गीत लिखे हुए हैं।

रेखा—वह भी है। (**कापी निकालती है**)।

सुजाता—मैं फिर लिख देती हूँ इस पर। मेरे अक्षरों की एकता से भी मेरी वाणी का सत्य प्रकट हो जायेगा। (**मेज की दवात-कलम से कापी पर लिखती है**) लो, देख लो।

रेखा—हाँ, बिलकुल एक ही से तो हैं।

सुजाता—मेरे सत्य का संशय गया न तुम्हारे?

रेखा—वह उपजा ही कब था? लेकिन······

सुजाता—क्या मेरे पगली होने का कुछ संशय है?

रेखा—नहीं, ऐसा तो नहीं जान पड़ता।

सुजाता—फिर क्या मेरे पतिता और कलंकिनी होने का वहुत-कुछ ?

रेखा—जीजी ! जीजी ! (**डरकर इधर-उधर दौड़ने लगती है**) तुम्हें देखकर मुझे डर लगने लगा।

सुजाता--(**उसे पकड़ने लगती है**) क्यों ? क्यों ?

रेखा—तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ। तुम यहाँ से चली जाओ। तुम्हारे गहने-जेवर, कपड़े-लत्ते, रुपया-पैसा, जो कुछ भी यहाँ है, उस सबको ले जाओ। मेरी चीजों में से भी जो तुम्हें पसन्द हों, वे भी तुम्हें समर्पित हैं।

सुजाता—कुछ भी नहीं चाहिए मुझे। इस मिट्टी के शरीर की कोई तृष्णा नहीं रह गई। नारी की सबसे बड़ी सम्पत्ति—उसके पतिदेव……नहीं, मैं उनको भी नहीं माँगती, वह भी तुम्हारे ही रहें। केवल एक रूखी-सूखी शरण दो कि जीवन का अभिशाप पूरा हो जाय।

रेखा—तुम्हारे पीहर का नौकर वदरी, वह मेरे विवाह के अवसर पर यहाँ आया था, अभी कल ही तो लौटा है वह।

सुजाता—जरूर वही वदनाम कर गया मुझे। क्या कहा उसने ?

रेखा--भूत ! सुजाता बहन का भूत !

सुजाता--(**रेखा का हाथ पकड़कर**) भूत क्या इतना ठोस होता है ?

रेखा—मैं नहीं जानती। (**घबराकर अपना हाथ छुड़ा लेती है**)।

सुजाता--पति ने जिसे मार दिया, उसी पर पिता ने उसका भूत खड़ा कर दिया, तुमने जीजी कहकर उसे जिला दिया। अब मार दोगी क्या ? तुम भी ?

रेखा—मेरे पिता जी को यह धोखा क्यों दिया गया ? इस समय तुम जाओ। विना उनसे पूछे नहीं। मैं आज ही उन्हें मना लूंगी। तुम कल आना।

सुजाता—मैं सबकी नजरों में मरी हुई ही रहना चाहती हूँ। फिर न किसी को धोखा और न किसी की आज्ञा। मैं केवल एक तुम्हारे ही विश्वास में जीना चाहती हूँ। जो फेंक दोगी उसी से प्राण और जो उतार दोगी, उसी में लाज रख लूंगी। मुझे संसार की इन विषैली नजरों से छिपा लो।

रेखा—कहाँ छिपा लूं ?

सुजाता—नीचे लकड़ी-कोयले का गोदाम है। उसकी चाबी तुम्हारे पास ही होगी। खोल दो, उसी में छिपी रहूँगी।

रेखा—उस सीलन, अन्धकार और काजल की कोठरी में ?

सुजाता—पति की दृष्टि में पतित हो जाने पर फिर उजाला कहां ?

रेखा—उस काजल से उनकी दृष्टि का विकार ठीक हो जायगा। चलो।

[दोनों भीतर चली जाती हैं। उसके बाद ही बाहर द्वार पर खटखटाहट होती है। कुछ उत्तर न मिलने पर फिर खटखटाहट दुहराई जाती है।]

विजय—(बाहर से) रेखा, द्वार खोलो।

रेखा—**(दौड़कर भीतर से आती है)** तुम तो अभी आ गए ? **(द्वार खोलती है)**।

[डॉ० बिसन के साथ विजय का प्रवेश]

विजय—ये बराबर टालते ही जा रहे थे। मैं पकड़ लाया इन्हें चाय पीने को।

रेखा--(मुसकराते हुए हाथ जोड़कर) बैठिए, मैं चाय बनाकर लाती हूँ।

[रेखा भीतर जाती है। विजय और डॉ० बिसन कुर्सियों में बैठते हैं।]

[पर्दा गिरता है]

तीसरा अंक

※

पहला दृश्य

स्थान--विजय की बैठक।

समय--संध्या।

[रेखा बलपूर्वक बैठक के भीतरी परदे-पड़े द्वार पर सुजाता का हाथ खींचती है।]

रेखा--जन्म का कितना भीषण अभिशाप! जीवन-भर तुम घर के ताले में बन्द रहीं और मौत के बाद लकड़ी-कोयले के गोदाम में।

[सुजाता घूँघट काढ़े हुए बैठक में खिचकर आ जाती है]

रेखा--(सुजाता का घूँघट उलटकर) तुम्हारे इस दुर्दान्त भाग्य की रेखा को अब मिटाकर ही छोड़ूँगी मैं। कैसा पीला पड़ गया तुम्हारा मुख उस काल-अँधेरे और बासी हवा में! तुम्हारे दण्ड की अन्तिम घड़ी बीत गई। अब न रहने पाओगी तुम उस निर्वास में।

सुजाता--विधाता के लेख पर किसी का क्या हाथ?

रेखा--मैंने उनसे पूछ लिया है तुम्हारे लिए।

सुजाता--(आग्रहपूर्वक रेखा का हाथ पकड़कर) क्या पूछ लिया है?

रेखा--जान लोगी जल्दी ही। तीन ही महीनों में उस काल-कोठरी में तुम्हारी तन्दुरुस्ती कितनी गिर गई?

सुजाता--नहीं, मैं तो जन्म से ही ऐसी हूँ।

रेखा--भोजन में भी तुम्हारी रुचि टूट गई। डाक्टर साहब को बुलाकर दिखाना पड़ेगा।

सुजाता--नहीं, नहीं, वह मुझे पहचानते हैं। उन्हें दिखा देने से सारा भेद खुल जाएगा। मेरी इस दशा के मूल कारण...

रेखा--क्या बात है ? कहते-कहते रुक क्यों गईं तुम ? **(सुजाता के हाथ पकड़ लेती है)**।

सुजाता--**(गहरे विचारों में डूब जाती है)** कुछ नहीं, बहन।

रेखा--लेकिन तुम्हारे अधूरे वाक्य से बात बिलकुल ही खुल गई। सत्य को कोई छिपाकर नहीं रख सकता, जैसे रूमाल में आग बँधी नहीं रह सकती। दीदी, मैं तो उन्हें बड़े आदर की दृष्टि से देखती हूँ।

सुजाता--मेरी क्या कम श्रद्धा है ?

रेखा--लेकिन अभी-अभी जो तुमने कहा।

सुजाता--बहुत छोटेपन से उनका मेरा परिचय है। उनके मुहल्ले में मेरी ननिहाल थी। मैं कई वर्ष वहाँ रही। हमारी इस जान-पहचान पर मास्टर साहब ने सुदृष्टि न रखी। उन्होंने मुझे तालों में बन्द करना आरम्भ किया। डॉक्टर साहब ने मुझे उस अपमान से बाहर निकालने के लिए...

[बाहर द्वार पर खटखटाहट]

रेखा--आ गए ! **(सुजाता हड़बड़ाकर भीतर जाने लगती है)** नहीं, अब कहीं जाने की जरूरत नहीं है। घूँघट काढ़कर यहीं पर बैठी रहो।

[सुजाता हाथ-पैर सभी कुछ ढककर एक कोने में सिमट जाती है। रेखा द्वार खोलती है।]

विजय—**(प्रवेश कर हाथ की किताबें मेज पर रखता है। सुजाता पर उसकी दृष्टि पड़ती है)** यह कौन ?

रेखा—वही, मेरे पीहर के गाँव की जिनके बारे में मैंने तुमसे कहा था। वह आ गई आज।

विजय—क्या काम करेंगी ये ?

रेखा—मेरा हाथ बँटायेंगी और क्या ? तुम साहित्य की ओर मेरी अभिरुचि जगा रहे हो। उसके लिए नहीं तो कैसे समय निकाला जायेगा ? एक समय की रसोई करेंगी ये। चौके-बासन के लिए महरी ठहरी ही।

विजय—पति द्वारा पत्नी का परित्याग बड़े परिताप की बात है, रेखा। क्यों, किस कारण छोड़ दी गई ये ?

रेखा—मैं क्या बताऊँ ?

विजय—पूछा नहीं तुमने ? **(कुर्सी पर बैठ जूता खोलता है)।**

रेखा—ये भी क्या बतायेंगी कारण ? वे कुछ हों तभी तो न ? संशयों की कंकरियाँ चुनकर पहाड़ उठा दिया जाता है। वह भारी पड़ जाता है पत्नी की साँसों पर, लेकिन पति को इससे क्या ?

विजय—तुम नारी हो, स्वभावतः तुम्हारा पक्ष नारी की ओर है। पति-पत्नी की बात छोड़ो। दोष हमारे माता-पिता का नहीं है क्या ? वे क्यों दो अनजाने-पहचाने प्राणियों के जीवन एक दूसरे के साथ बाँध देते हैं ?

रेखा—विवाह के बाद के प्रेम में तुम्हें विश्वास नहीं। प्रेम के बाद के विवाह के कुपरिणाम भी क्या कम हैं ?

विजय—मैं पूछता हूँ रूप और गुणों की कोई कमी रही ?

रेखा—नहीं।

विजय—स्वभाव न मिला होगा, जन्म-कुण्डली मिल जाने से क्या होता है ?

रेखा—मुझे तो नहीं दिखाई देती कोई कसर।

विजय—फिर क्या बात है ? पिता ने उचित दहेज न दिया होगा।

रेखा—हो सकता है। ससुराल वालों का लालच बढ़ता ही

जाता है।

विजय—घूँघट निकालकर कैसे काम चलेगा ?

रेखा—गाँव से आई-ही-आई हैं, अभी नई-नई जगह में।

विजय—अब इस युग में घूँघट !

रेखा—अपनी-अपनी आदत। धीरे-धीरे छूट जाएगी।

विजय—बुरी आदत को उत्साह नहीं मिलना चाहिए। हम ही क्यों न दूर कर दें इनका यह अन्धविश्वास ? **(सुजता का घूँघट हटाने को बढ़ता है)**।

रेखा—**(बीच में ही विजय को रोक लेती है)** क्या-क्या ? बड़ी अशिष्टता है यह तुम्हारी ?

विजय—अच्छा ही किया जो तुमने मुझे रोक लिया। सोचता हूँ, क्यों मेरे हाथ उधर खिच गए ?

रेखा—शायद सुजाता दीदी की यह साड़ी जो मैंने इन्हें पहनने को दे दी। इसी से तुम्हारे हृदय की पुरानी स्मृतियाँ जाग पड़ीं। गाँव के जो कपड़े ये यहाँ पहनकर आई थीं, मुझे नहीं रुचे।

विजय—तुम्हारा कहना गलत नहीं है। रंग, स्वर और गन्ध अपने सहवास से पुराने संस्कारों को उभार देते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। लेकिन मैं इनके घूँघट से खिच गया। मैं नहीं जानता शहर में आकर फिर यह रूढ़ि की पूजा क्यों ?

रेखा—तुम भी तो पहले परदे की प्रथा के बड़े अनुमोदक थे।

विजय—कौन कहता है ?

रेखा—ऐसा ही सुना है मैंने। पहली स्त्री को आप तालों में बन्द कर जाते थे न ? क्या वह घूँघट का ही एक भयानक रूप नहीं है ?

विजय—हो सकता है। वह समय चला गया।

रेखा—यह समय भी तो रहेगा नहीं। नगर की रीति-रिवाज में

घुल-मिल जाने पर यह घूँघट आप-से-आप उड़ जायेगा। अभी तो ये पड़ोस की औरतों से भी घूँघट करने का निश्चय किए बैठी हैं।

विजय—रेखा, मैं सोचता हूँ···

रेखा—तुम क्या सोचते हो ?

विजय—मुँहफट हूँ, पर मन में कोई मैल नहीं रखता। तुम्हारी दीदी के कोई शारीरिक विकृति तो नहीं ?

[सुजाता धीरे-धीरे कुछ खाँसती है]

रेखा—तुम्हारी बात का क्या अर्थ है ?

विजय—आँख कानी, रंग काला, नाक घिसी या गले में घेघा तो नहीं ? हाथ-पैर भी कैसे कछुए की तरह छिपा लिए हैं। उनमें कोई रक्त का विकार तो नहीं ? नहीं रेखा, विना अच्छी तरह······

[सुजाता फिर घूँघट में खाँसती है]

विजय—विना अच्छी तरह इनकी डॉक्टरी कराए इनके हाथ का खा लेना संकट से खाली न होगा। यह बीमार जान पड़ती हैं, यदि कोई संक्रामक बीमारी इनके हुई तो ? (**स्लीपर पहनता है**)।

रेखा—कुछ नहीं, केवल थोड़ी-सी ठंड लग गई है।

विजय—रेखा, मैं तुम्हें इनकी सहायता करने से नहीं रोकता। यह एक जगह बैठकर आराम करें।

रेखा—आराम करने को आई हैं क्या यह यहाँ ?

विजय—फिर घर के कोई और छोटे-मोटे काम करें। रसोई, जब तक इनकी ठीक-ठीक डॉक्टरी जाँच न कर ली जाय, तब तक नहीं। स्पष्टवादिता अपने परिणाम में बहुत अच्छी चीज है। सबका हित ही मुझे इष्ट है। आशा है, तुम दोनों मेरी बात का बुरा न मानोगी।

रेखा—आज ही करा लो डॉक्टरी जाँच। डॉक्टर बिसन आपके मित्र हैं ही और परले द्वार के पड़ोसी।

विजय—हाँ, वह इनकी दूसरी बीमारी भी दूर कर देंगे ।

रेखा—और कौन-सी बीमारी ?

विजय—इनकी यह सामाजिक बीमारी । डॉक्टर साहब कहते हैं, घूँघट ओट में किए गए सारे जगत् को बेईमान समझने की बीमारी है । मानसिक रोग शारीरिक रोग से अधिक भयंकर होता है । देर करने से क्या लाभ ? मैं अभी बुला लाता हूँ उन्हें । **(चला जाता है)** ।

सुजाता—**(घूँघट काढ़े हुए उठ जाती है)** बहन. क्या हो गया यह ? वह जरूर उन्हें बुला लायेंगे । अब क्या होगा ?

[रेखा बाहर का द्वार बन्द कर उस पर साँकल चढ़ा देती है ।]

सुजाता—अब मेरा सारा भेद खुल जायेगा । अच्छा था, मैं उसी कोयले की कोठरी में पड़ी रह जाती ।

रेखा—कैसे खुल जाएगा भेद ?

सुजाता—डॉक्टरी जाँच के आगे घूँघट पराजित हो जायेगा ।

रेखा—उन्हें तुम्हारी बीमारी देखनी है या मुँह ?

सुजाता—अपने पुराने कपड़े पहनकर मैंने सहज ही उनके मन में अपना चित्र जगा लिया । अब अगर मेरा भेद खुल गया तो मैं तो जाऊँगी ही; तुम्हारा जीवन भी काँटों में पड़ जायेगा । इसलिए फिर मुझे उसी कोयले के गोदाम में गाड़ दो । कह देना, उसे शहर पचा नहीं, गाँव को ही चल दी । **(खाँसती है)** ।

रेखा—भेद खुल कैसे जायेगा ? मैं बराबर तुम्हारे घूँघट की चौकसी करती रहूँगी । और रात को जब तुम भण्डार के कमरे में सोने चली जाओगी तो उसकी चाबी मंगल-सूत्र की तरह मैं अपने गले में पहन लूँगी ।

सुजाता—**(फिर खाँसती है)** क्खू ! क्खू ! क्खू !

रेखा—तुम्हारी इस खाँसी से मेरी चिन्ता बढ़ने लगी । रोग अपने

अंकुर में ही बड़ी आसानी से मिटा दिया जा सकता है। इसलिए मैं अच्छा समझती हूँ जो उनके मन में तुम्हारी डॉक्टरी का विचार आया है।

सुजाता—मुझे भी तो राजी होना चाहिए। बीमारी मिटाने को इतना नहीं, जितना मौत मिटाने के लिए।

रेखा—यह क्या कहा तुमने ?

सुजाता—डॉक्टर साहब को मेरी नकली मृत्यु का बहुत कष्ट होगा। बहुत सम्भव है, वह स्वयं अपने को मेरी सच्ची मौत का कारण समझते होंगे। मेरी जाँच से मेरी बीमारी न भी जाये, उनकी भारी चिन्ता मिट जायेगी।

[बाहर से द्वार पर खटखटाहट]

विजय—**(बाहर से)** खोलो द्वार।

[सुजाता घूँघट खींच भीतर चली जाती है। रेखा द्वार खोलती है। विजय डॉक्टर बिसन को लेकर प्रवेश करता है।]

विजय—कहाँ है तुम्हारी दीदी ? मैं डॉक्टर साहब को ले आया। बुला लाओ उन्हें।

[रेखा भीतर चली जाती है]

डॉ० बिसन—**(कुर्सी पर बैठते हुए)** दीदी कौन हैं ?

विजय—इन्होंने अपने पीहर से किसी को बुलाया है और यह उसे यहाँ महराजिन बना देना चाहती हैं। गरीब की सहायता घर में जगह देकर की जा सकती है। पर डॉक्टर, एक बीमार को अपने घर की रसोई सौंप देना क्या कम खतरे की बात है ?

डॉ० बिसन—नहीं जी, घर में भी क्यों जगह दी जाय ? दया ही दिखानी हो तो कुछ रुपया-पैसा देकर बवाल काट दिया जा सकता है।

विजय—पर्दा, घूँघट, छुआछूत, अन्धविश्वास और बुढ़िया पुराणों

की गठरी बाँधकर ले ग्राई है। वह तुम्हें ग्रपना मुँह, नाड़ी ग्रौर साँस की क्रिया दिखाने को ग्रासानी से राजी न होगी। लेकिन डॉक्टर, हमारी तन्दरुस्ती रखने के लिए तुम्हें ग्रच्छी तरह परीक्षा कर लेनी होगी। किसी छूत की बीमारी के कीड़े तो नहीं लाई है वह ग्रपने साथ। मुझे शक है।

डॉ० बिसन--(**हँसता है**) ग्रौर शक तुम्हारी पुरानी ग्रादत है, मास्टर।

चपरासी--(**बाहर से द्वार खटखटाकर**) मास्टर साहब, हेडमास्टर साहब ने बुलाया है ग्रापको। फौरन ही चले ग्राने को कहा है।

विजय--(**द्वार के पास जाकर चपरासी की बात सुनता है**) चलो, मैं ग्राता हूँ।

चपरासी—गाड़ी भेजी है उन्होंने। मेरे साथ ही चलिए।

विजय—हाँ-हाँ, ग्रा तो रहा हूँ। (**भीतर ग्राते हुए**) जूता भी न पहनूँ क्या?

डॉ० बिसन—क्या बात है?

विजय—(**जूते पहनते हुए**) स्टाफ की मीटिंग थी ग्राज, स्थगित हो गई। उसी के बारे में कुछ कहते होंगे। मैं ग्रभी ग्राता हूँ। डॉक्टर, पूरी-पूरी जाँच कर लेना। कोई धोखा न रह जाय।

डॉ० बिसन—कुछ भी नहीं रहेगा। निश्चित रहो।

[**विजय जूते पहन चला जाता है**]

रेखा—(**भीतर से ग्राती है**) वह कहाँ गए?

डॉ० बिसन—स्कूल, ग्रभी ग्रा जायेंगे। मतलब तो मुझसे है। कहाँ है बीमार?

रेखा—मैं ले ग्राती हूँ। लेकिन डॉक्टर साहब, ग्रापको बात ग्रपने तक ही रखनी होगी।

डॉ० बिसन—क्या ? क्या ? यह क्या कह रही हो तुम ? मैं बीमार को अच्छा बताकर तुम्हारा जीवन संकट में डाल दूँ और अपने पेशे का मुँह काला कर दूँ ?

रेखा—(**खीझकर**) ऐसा कौन कहता है आपसे ?

डॉ० बिसन—बीमार को बीमार न कहकर उसकी महिमा नहीं बढ़ाई जा सकती। अपना और मास्टर साहब का जीवन संकट में डाल देना चाहती हो, क्यों ?

रेखा—(**मन्द हास्य के साथ**) नहीं, डॉक्टर साहब, आप बीमार को बीमार ही बताइए।

डॉ० बिसन—बस तो बात समाप्त हो गई।

रेखा—लेकिन मेरी महराजिन को भी महराजिन ही बताना होगा।

डॉ० बिसन—(**कौतूहल के साथ**) क्या मतलब है तुम्हारा ?

[रेखा तेजी से भीतर चली जाती है]

डॉ० बिसन—बड़े विस्मय में पड़ गया हूँ मैं। एक भूचाल जाग पड़ा है मेरी कल्पना में।

[रेखा सकुचाती-झिझकती, घूँघट काढ़े सुजाता को बलपूर्वक खींचकर लाती है।]

रेखा—देखिए डॉक्टर साहब, यही हैं मेरी जीजी। घूँघट—यह सदियों का आक्षेप, क्या दो ही दिन में मिट जाएगा ? पर्दे के अतिरिक्त भी तो नारी के स्वभाव में लज्जा और संकोच की बड़ी मात्रा है। वे कैसे निकाल दिए जायेंगे ?

[सुजाता हाथ-पैर ढक पीठ फिराकर एक कोने में खड़ी हो जाती है।]

डॉ० बिसन—इस कुर्सी में बैठ जाने को कहो इनसे।

रेखा—मास्टर साहब नहीं हैं यहाँ। यह भगवान् की विशेष कृपा

ही हुई जो उन्हें यहाँ से जाना पड़ गया। जब बीमारी का संशय है, तो फिर डॉक्टर साहब का क्या भय ? **(सुजाता को कुर्सी की तरफ ले जाना चाहती है, वह नहीं जाती)** चलो तो सही। घूँघट काढ़े ही रहना। डॉक्टर साहब थर्मामीटर लगाकर ही तुम्हारी बीमारी की जाँच कर लेंगे। क्यों, डॉक्टर साहब ? **(बाहर के द्वार में साँकल दे देती है)**।

डॉ० बिसन—हो सकता है।

रेखा—चलो दीदी, कोई भय नहीं है। डॉक्टर साहब अपने ही हैं। उनसे क्या पर्दा ?

[सुजाता रेखा के कान में कुछ कहती है]

रेखा—डॉक्टर साहब, आप घड़ी देखते रहिए। थर्मामीटर मुझे दीजिए। मैं इनका बुखार नापकर आपको दे दूँगी। आप पढ़ लीजिएगा।

डॉ० बिसन—रेखा जी, एक थर्मामीटर ही से क्या होता है ? और भी तो बहुत-से हिसाब देखने होते हैं।

रेखा—पहले थर्मामीटर तो दीजिए। **(डॉ० बिसन के हाथ से थर्मामीटर लेकर सुजाता के घूँघट के भीतर मुँह में दे देती है)**।

डॉ० बिसन—खाँसी भी है ?

रेखा—है थोड़ी-सी।

डॉ० बिसन—कब से ?

रेखा—दस-पाँच दिन से, सर्दी लग गई है।

डॉ० बिसन—बुखार ?

रेखा—आपका थर्मामीटर बतायेगा

डॉ० बिसन—निकालो उसे।

[रेखा थर्मामीटर लेकर डॉ० बिसन को देती है।]

डॉ० बिसन—**(थर्मामीटर में पढ़कर)** बुखार नहीं जान पड़ता

कुछ भी ।

रेखा—ऐसे ही वहम हो गया उन्हें ।

डॉ० बिसन—वहम को पाल लेना बुरा है । उसके होते ही उसे दूर करना पहला कर्त्तव्य होना चाहिए ।

रेखा—हो गया फिर, उनका वहम दूर कर दिया आपने ।

डॉ० बिसन—अभी कहाँ ?

[सुजाता खाँसती है]

डॉ० बिसन—खाँसी है इन्हें । देखना पड़ेगा । (**गले से स्टेथस्कोप निकालता है**) नाड़ी भी देखनी पड़ेगी ।

रेखा—(**सुजाता को ले जाकर डॉ० बिसन के निकट कुर्सी में बिठाकर**) नाड़ी देख लीजिए ।

[सुजाता फिर खाँसती है]

डॉ० बिसन—खाँसी कितनी पुरानी है ? फेफड़ों की जाँच करनी ही पड़ेगी । मैं अपने मित्र को धोखा नहीं दे सकता ।

रेखा—आप मेरी दीदी की परम्परा भी नहीं तोड़ सकते । आप अपना मुँह फिराइए । (**डॉ० बिसन की कुर्सी की पीठ फिराकर उन्हें बिठाती है**) ।

डॉ० बिसन—जाँच कैसे होगी ?

रेखा—स्टेथस्कोप मुझे दीजिए । (**उनके हाथ से स्टेथस्कोप लेकर उनके कानों में पीठ की तरफ से लगाकर सुजाता की छाती में लगाती है**) ठीक हो गया न ?

डॉ० बिसन—जरा बाईं तरफ करो ।

[रेखा वैसा ही करती है]

डॉ० बिसन—कुछ दाहिनी तरफ ।

[रेखा वैसा ही करती है]

डॉ० बिसन—हूँ ऽ ऽ !

रेखा—डॉक्टर साहब, क्या विचार है ?

डॉ० बिसन—**(उठकर उलटा स्टेथस्कोप कानों में से निकालकर गले में पहन लेता है)** नाड़ी भी तो देख लूँ ।

रेखा—नाड़ी का देखना क्या है ? अंचल के भीतर हो गिन लीजिए उसकी चाल ।

डॉ० बिसन—हाथ-पैर भी ताले में बन्द ! हद हो गई पर्दे की ! **(असन्तुष्ट होकर जाने लगता है)** ।

रेखा—डॉक्टर साहब, आप तो नाराज हो गए । बैठिए, नाड़ी देख लीजिए न ।

डॉ० बिसन—बात ही ऐसी कर रही हो तुम । **(लौटकर कुर्सी पर बैठ जाता है ।)**

रेखा—अब तक की जाँच में मैं समझती हूँ किसी रोग की गम्भीरता नहीं है ।

[सुजाता का हाथ निकालकर डॉक्टर बिसन के हाथ में दे देती है ।]

डॉ० बिसन—**(एक हाथ में उसकी नाड़ी की चाल गिनता है, दूसरे हाथ की घड़ी में देखता है । अचानक सब-कुछ छोड़कर उसकी हथेली को देख चौंक उठता है)** यह क्या ? **(फिर उसकी हथेली की रेखाओं को ध्यान से देखने लग जाता है)** वही तो !

रेखा—नाड़ी छोड़कर हथेली में क्या देखने लगे ? आप डॉक्टर हैं या ज्योतिषी ?

डॉ० बिसन—इनके हृदय और मस्तिष्क की दोनों रेखाएँ एक में मिली हैं । उनको भी तो···

[सुजाता अपना हाथ खींच लेती है ।]

डॉ० बिसन—कौन हैं ये ?

रेखा—आपको बीमार की बीमारी से मतलब है या उसकी जात से ?

[सुजाता उठकर भीतर को भागने लगती है। डॉ० बिसन उसकी धोती पकड़ लेता है जिससे घूँघट खिच जाता है।]

डॉ० बिसन—कौन सुजाता ? सुजाता ?

[सुजाता भीतर भाग जाती है और द्वार बन्द कर लेती है।]

डॉ० बिसन—कौन हैं ?

रेखा—वही।

डॉ० बिसन—सुजाता ही तो न ?

रेखा—हाँ, सुजाता ही।

डॉ० बिसन—जी उठीं ?

रेखा—मरी ही कब थीं ?

डॉ० बिसन—बुला दो, कि मैं अपना विश्वास जगा लूं।

रेखा—बुला दूंगी ! पहले प्रतिज्ञा करो कि तुम यह बात किसी से नहीं कहोगे।

डॉ० बिसन—किसी से नहीं कहूंगा।

रेखा—दीदी, द्वार खोल दो। आ जाओ, इन्होंने तुम्हारा भेद किसी को न देने की प्रतिज्ञा की है।

[सुजाता द्वार खोलकर धीरे-धीरे हाथ जोड़ती हुई डॉ० बिसन के समीप आती है।]

डॉ० बिसन—(हाथ जोड़कर) मृत्यु के बाद भी जी उठा हुआ तुम्हारा यह दर्शन उस प्रभु की अनन्त कृपा है। तुम्हारी भलाई के लिए किया गया मेरा वह प्रयोग उस तरह वियोगांत रूप ले लेगा। जीवन और सृष्टि, सब पर से मेरी आस्था चली गई थी। क्यों मास्टर ने

तुम्हारी मौत को प्रसिद्ध कर दिया ?

सुजाता—मैं क्या बताऊँ ?

डॉ० बिसन—उस झूठी मृत्यु का तिरस्कार करने के लिए तुम्हारे मुख में जीभ नहीं थी ?

सुजाता—जो हो गया, उसे हो जाने दो ।

डॉ० बिसन—नहीं, यह बात नहीं मानी जायेगी ।

सुजाता—तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ, बिसन, किसी से कुछ न कहो । रेखा की कृपा से मुझे सब-कुछ मिल गया । मुझे और अधिक नहीं चाहिए । मैं जैसे मर चुकी हूँ, मुझे वैसे ही मरी रहने दो ।

विजय—(**बाहर से द्वार खटखटाकर**) द्वार खोलो !

[**रेखा द्वार खोलती है । सुजाता घूँघट काढ़कर खड़ी हो जाती है ।**]

विजय—(**प्रवेश करता है**) क्यों डॉक्टर, अभी तक जाँच नहीं हुई ?

डॉ० बिसन—कर ली ।

विजय—क्या पाया ?

डॉ० बिसन—एक गम्भीर बीमारी जान तो पड़ती है ।

विजय—कहा न था मैंने ?

[**सुजाता खाँसती है**]

विजय—यह पुरानी खाँसी ?

डॉ० बिसन—एक गम्भीर बीमारी जान तो पड़ती है । यदि जल्दी ही इसका इलाज न किया जायेगा तो बढ़ सकती है, संक्रामक हो सकती है ।

रेखा—(**चौंक पड़ती है**) डॉक्टर साहब !

विजय—कहा न था मैंने पहले ही ? अच्छी सूझी मुझे, डॉक्टर, मैं तुम्हें बुला लाया ।

रेखा—नहीं, कोई बीमारी नहीं है।

विजय—क्यों, डॉक्टर ?

डॉ० बिसन—है कैसे नहीं ? यह घूंघट क्या कोई छोटी बीमारी है ? यह तो बीमारियों का सरदार है। इसके पर्दे में बीसियों रोग के कीटाणुओं को पनपने का अवसर मिलता है। इसे जल्दी-से-जल्दी उतारकर फेंक देना होगा। धूप और खुली हवा में घूमना भी आवश्यक है।

विजय—सही बात है, डॉक्टर, अगर घूंघट को तुम किसी इंजेक्शन से नहीं हटा सकते तो अपने हाथ से मिटा जाओ। तुम डॉक्टर हो, कर सकते हो।

[**सुजाता उठकर भाग जाती है**]

रेखा—जल्दी न कीजिए, धीरे-धीरे सब-कुछ हो जाएगा। (**भीतर चली जाती है**)।

विजय—तुमने देखा डॉक्टर, क्या देखा ?

डॉ० बिसन—देखा। चिन्ता, अल्पाहार, श्रम और पति का तिरस्कार ही उसकी बीमारी है। तुम्हारी शरण पाकर सब-कुछ ठीक हो जाएगा।

विजय—कोई शारीरिक विकृति तो नहीं है ?

डॉ० बिसन—नहीं।

विजय—स्वभाव की होगी।

डॉ० बिसन—मास्टर, बहुत दिनों से तुमसे एक सत्य छिपाते-छिपाते थक गया हूँ। अब नहीं ढका जा सकता वह। प्राणों पर बहुत भारी पड़ गया है।

विजय—क्या बात है ?

डॉ० बिसन—मास्टर, मैं ही वह व्यक्ति हूँ जो उस दिन तुम्हारा

ताला खोलकर सुजाता को उसकी कैद से बाहर ले गया था। लेकिन मेरा उद्देश्य पवित्र था।

विजय—(**वज्राहत-सा होकर उसकी दोनों बाँहों को पकड़ लेता है। फिर उसे झकझोरता है**) तुम ले गए उसे ? ऐसा नीच काम किया तुमने ? मित्र का विश्वासघात ?

डॉ० बिसन—नहीं, बिलकुल नहीं ! तुम रोज उसे ताले में बन्दकर उसका अपमान करते थे। वह मेरे लिए असह्य हो उठा था। ताले की कमजोरी दिखाने को मैंने वैसा किया, अपने चरित्र की नहीं।

विजय—यह सत्य तुम्हें आज से बहुत पहले मुझ पर खोल देना था।

डॉ० बिसन—उसी रात को उसकी मृत्यु का समाचार सुनकर क्यों उस शोक-कथा को फिर से लौटाता ?

विजय—लेकिन वह मरी नहीं है।

डॉ० बिसन—कहाँ है ?

विजय—एक महीने के बाद वह मेरे पास लौटकर आई।

डॉ० बिसन—फिर क्या हुआ ?

विजय—दर-दर ठोकर खा लौटने वाली उस नारी में मैं कैसे अपना सम्बन्ध पहचान लेता ? मैंने उस प्रेत को अपने घर से निकाल बाहर कर दिया।

डॉ० बिसन—तुम्हारे प्रेम और पूजा से खिंची हुई वह आई ! वह कहाँ ठोकर खा सकती है ? किस की पाप-दृष्टि से वह मलीन होगी ? तुम्हारी ऐसी ही झूठी पवित्रता से तुम्हारे समाज का कोढ़ लाइलाज होता जा रहा है। मैं कहता हूँ जब तक नारी के प्राण पति के प्रेम में प्रतिष्ठित हैं, पापी की कोई चेष्टा उसे अपवित्र नहीं कर सकती। कहाँ है वह त्याग और तपस्या की प्रतिमा ? कहाँ है वह देवी ?

विजय—तुम उसे देवी कहते हो ? मैंने उसे पहचानने से भी इनकार किया।

डॉ० बिसन—उसे ढूँढो, विजय। वह अब भी कहीं तुम्हारे ध्यान के कवच में सुरक्षित तुम्हारा नाम जपती होगी। अफसोस ! तुमने उस उज्ज्वल सत्य का तिरस्कार कर दिया।

विजय—उसकी मृत्यु का समाचार फैला देने के अनन्तर फिर और करता भी क्या ? केवल एक वही मार्ग था।

डॉ० बिसन—क्या तुम उसे घर के भीतर नहीं छिपा सकते थे ? तुमने, तुमने पवित्र प्रेम के साथ घोर विश्वासघात कर दिया। उसे छिपा लेते, छिपा लेते।

विजय—छिपा कैसे लेता ? रेखा क्या कहती ?

डॉ० बिसन—कुछ भी न कहती। नारी का मूल्य नारी पुरुष से कहीं अधिक समझती है।

विजय—कभी असावधानी से बात खुल पड़ती तो समाज में भारी बदनामी न फैल जाती ?

डॉ० बिसन—समाज के भय का यह झूठा घास-फूस का रावण, वह मारे जाने पर भी अब तक जीता रह गया, उसे फूँक दो। हिन्दू-धर्म का वह पाखण्ड ! मनुष्यता से नहीं डरे तुम और उस पाखण्ड ने तुम्हारी गर्दन दबोच ली !

विजय—सुजाता कहाँ है ?

डॉ० बिसन—सच्ची खोज के हृदय में पैदा हो जाने पर वह आप-से-आप आ मिलेगी ?

विजय—डॉक्टर, वह मिलेगी ?

डॉ० बिसन—मिलेगी।

[**दोनों बाहर जाते हैं**]

रेखा भीतर से आती है। उन्हें बाहर जाते देखकर द्वार पर साँकल चढ़ा देती है।]

रेखा—चले गये दोनों। (**पुकारकर**) आओ, जीजा !

सुजाता—(**चिन्तित होकर आती है**) क्या बताऊँ, बहन···

रेखा—कहो भी तो।

सुजाता—जान-बूझकर नहीं किया मैंने, मेरे मुख से निकल पड़ा। अब क्या होगा ?

रेखा—क्या निकल पड़ा तुम्हारे मुख से ?

सुजाता—मेरे पिता जी आए हैं यहाँ।

रेखा—कौन कहता है ?

सुजाता—मैंने अभी देखा उन्हें।

रेखा—तो फिर क्या बात हो गई ?

सुजाता—तुम मेरे नए कमरे की खिड़की खोल आई थीं। तुम्हारे इधर आते ही मैंने बाहर से पिताजी की पुकार सुनी—'मास्टरजी, मास्टरजी !' जान पड़ता है, वह इस मकान का रास्ता भूल गए हैं। माता-पिता की पुकार सन्तान के लिए बड़ा प्रबल बन्धन है। फिर मेरी-जैसी ठुकराई गई बेटी के लिए तो और भी अधिक। मेरी सारी सुध-बुध खो गई। मन्त्र से खिंचे हुए की तरह खिड़की की राह मैंने पिताजी को हाथ जोड़कर कहा—'हाँ, पिताजी, आइए, यही मकान है।' (**बड़ी घबराहट के साथ**) अब क्या होगा ?

रेखा—(**हँसकर**) वह आते होंगे और क्या ?

सुजाता—(**रेखा के दोनों हाथ पकड़कर**) तब, तब ?

रेखा—उन्हें आने दो। उनका स्वागत है। क्या वह मेरे भी पिता जी के समान नहीं हैं ?

सुजाता—क्या कहोगी उनसे ?

रेखा—**(क्षीण हँसी के साथ)** उनके ही शब्द ज्यों-के-त्यों लौटा दूंगी उन्हें। प्रकृति में ऐसे ही संसार का लेन-देन बराबर किया जाता है।

सुजाता—बहन, न-जाने क्या कह रही हो तुम ?

रेखा—उन्होंने देखा तुम्हें ?

सुजाता—ठीक-ठीक नहीं कह सकती। लेकिन मेरी आवाज से उनके मुख पर एक प्रकाश जाग पड़ा। मैंने परदे की ओट में देखा, मानो उनकी बहुत दिन की कोई खोई चीज मिल गई।

रेखा—आने दो उन्हें। मैं कह दूंगी सुजाता दीदी की खाली जगह मैंने भर दी है यहाँ।

सुजाता—जब वह मेरे उत्तर की बात कहेंगे ?

रेखा—मैं कह दूंगी जो भी उत्तर होंठों पर आ जायेगा। चलो, तुम्हें भण्डार के कमरे में बन्द कर दूं।

[रेखा बाहरी द्वार की सांकल खोल सुजाता को लेकर भीतर चली जाती है।]

बदरी—**(बाहर से द्वार खटखटाकर)** मास्टरजी, मास्टरजी, दरवाजा खोलो।

[कोई जवाब न मिलने पर बदरी दरवाजा खोल भीतर घुस आता है। पिता भीतर जाने में संकोच करते हैं।]

पिता—**(भीतर से)** अरे नहीं रे !

बदरी—**(उनका हाथ पकड़कर भीतर खींच लेता है)** क्यों, झिझकते क्यों हो ?

पिता—जाने तू किसके मकान के भीतर ले आया ?

बदरी—मैं क्या जानता-पहचानता नहीं हूँ ? तुम ही उधर न-जाने कहाँ गली में बहक गए थे। मैं कई बार यहाँ आ चुका हूँ। अजी

मास्टरजी, ओ मास्टरजी ! पण्डितजी से तुम कुर्सी में बैठ जाओ ना, खड़े कब तक रहोगे ? (**कमरे की एक-एक चीज पर नजर डालकर**) हर चीज को पहचान लिया मैंने । अभी उनकी दूसरी शादी पर मैं यहाँ पूरे तीन दिन रहा था । बैठ जाओ ना, घबराते क्यों हो ? (**पण्डितजी को पकड़कर कुर्सी में बिठा देता हैं**) मैं अभी भीतर जाकर बुला लाता हूँ उन्हें ।

रेखा—(**भीतर से**) कौन है ? (**कहती हुई कमरे में आती है**) ।

बदरी—मैं हूँ बदरी । पहचाना नहीं क्या ? नमस्ते !

रेखा—क्यों नहीं ? नमस्ते ! (**हाथ जोड़ती है**) ।

बदरी—इन्हें भी हाथ जोड़ो । ये सुजाता बहन के पिताजी हैं ।

रेखा—(**पिता को प्रणाम कर**) मैं पैर छूती हूँ ।

पिता—सौभाग्यवती रहो, बेटी ।

रेखा—बड़ी कृपा की आपने, जो आज हमारा घर पवित्र कर दिया ।

पिता—वे कहाँ हैं ?

रेखा—अभी यहीं थे । पड़ोस में डॉक्टर साहब के यहाँ गए होंगे । अभी आ जायेंगे ।

पिता—और वह कहाँ है ?

रेखा—(**आश्चर्य से**) और कौन ?

पिता—सुजाता, मेरी लड़की ?

रेखा—पिता जी, बड़ा अजीब आपका यह प्रश्न है । उनके न होने से ही तो मैं यहाँ हूँ । आपने मेरे विवाह के अवसर पर भेंट भेजी थी, यह बदरी ही तो लाया था ।

बदरी—जरूर मैं ही लाया था । क्या झूठ बोलता हूँ ?

पिता—क्यों कहते हो; ऐसा क्यों कहते हो ? ऐसा हो नहीं सकता ।

यह हुआ नहीं है। मैंने उस पर बड़ा अत्याचार किया है। तभी से मैं ग्लानि में भटक रहा हूँ। मेरी आत्मा दिन-रात धिक्कारती है मुझे। बुला दो उसे। बुला दो मेरी सुजाता को। उसने अभी पुकारा मुझे मकान के पिछवाड़े, खिड़की पर।

रेखा--(**पीछे को हटती हुई**) पिता! पिता! आपने भी देखा? आपने भी सुना? बड़ी आपत्ति है! अब क्या करें हम?

पिता—बेटी! बेटी! यह क्या कहती हो? तुमने तो मेरी सारी आशाएँ चूर-चूर कर दीं!

रेखा—मैं क्या करूँ, भगवान् की यही इच्छा होगी। आपने कोई पूजा-पाठ नहीं किए?

बदरी—क्यों नहीं? बड़ा पूजा-पाठ करते हैं, रोज बिला नागा।

रेखा--कुछ हमें भी बताइए, हम भी करें।

पिता—मैं नहीं समझा, तुम्हारा मतलब क्या है?

बदरी—मैं बताऊँ पण्डित जी, वही भूत की बात! उस भयानक बादलों की काली रात में जो सुजाता बहन हमें दिखाई दी थी, वही इन्होंने भी देख ली होगी।

पिता—चुप रह, मूर्ख! क्या भूत वैसा होता है?

बदरी—तब आपने मेरे मना करने पर भी उस रात को मेरी बात क्यों नहीं मानी?

पिता—उस रात बड़ी भूल हो गई।

रेखा--वही आज दिन में भी फिर दुहरा रहे हैं आप।

बदरी--हाँ पंडितजी, जरूर वही बात है।

पिता--फिर पश्चात्ताप कैसे होगा उस भूल का?

रेखा—इस तरह जगह-जगह उनकी तलाश कर और उनका नाम लेकर पूछने से तो उनकी आत्मा इस भूमण्डल पर भटकती रह जायेगी।

मास्टरजी, ओ मास्टरजी ! पण्डितजी से तुम कुर्सी में बैठ जाओ ना, खड़े कब तक रहोगे ? **(कमरे की एक-एक चीज पर नजर डालकर)** हर चीज को पहचान लिया मैंने । अभी उनकी दूसरी शादी पर मैं यहाँ पूरे तीन दिन रहा था । बैठ जाओ ना, घबराते क्यों हो ? **(पण्डितजी को पकड़कर कुर्सी में बिठा देता है)** मैं अभी भीतर जाकर बुला लाता हूँ उन्हें ।

रेखा—**(भीतर से)** कौन है ? **(कहती हुई कमरे में आती है)** ।

बदरी—मैं हूँ बदरी । पहचाना नहीं क्या ? नमस्ते !

रेखा—क्यों नहीं ? नमस्ते ! **(हाथ जोड़ती है)** ।

बदरी—इन्हें भी हाथ जोड़ो । ये सुजाता बहन के पिताजी हैं ।

रेखा—**(पिता को प्रणाम कर)** मैं पैर छूती हूँ ।

पिता—सौभाग्यवती रहो, बेटी ।

रेखा—बड़ी कृपा की आपने, जो आज हमारा घर पवित्र कर दिया ।

पिता—वे कहाँ हैं ?

रेखा—अभी यहीं थे । पड़ोस में डॉक्टर साहब के यहाँ गए होंगे । अभी आ जायेंगे ।

पिता—और वह कहाँ है ?

रेखा—**(आश्चर्य से)** और कौन ?

पिता—सुजाता, मेरी लड़की ?

रेखा—पिता जी, बड़ा अजीब आपका यह प्रश्न है । उनके न होने से ही तो मैं यहाँ हूँ । आपने मेरे विवाह के अवसर पर भेंट भेजी थी, यह बदरी ही तो लाया था ।

बदरी—जरूर मैं ही लाया था । क्या झूठ बोलता हूँ ?

पिता—क्यों कहते हो; ऐसा क्यों कहते हो ? ऐसा हो नहीं सकता ।

यह हुआ नहीं है। मैंने उस पर बड़ा अत्याचार किया है। तभी से मैं ग्लानि में भटक रहा हूँ। मेरी आत्मा दिन-रात धिक्कारती है मुझे। बुला दो उसे। बुला दो मेरी सुजाता को। उसने अभी पुकारा मुझे मकान के पिछवाड़े, खिड़की पर।

रेखा--(**पीछे को हटती हुई**) पिता ! पिता ! आपने भी देखा ? आपने भी सुना ? बड़ी आपत्ति है ! अब क्या करें हम ?

पिता—बेटी ! बेटी ! यह क्या कहती हो ? तुमने तो मेरी सारी आशाएँ चूर-चूर कर दीं !

रेखा—मैं क्या करूँ, भगवान् की यही इच्छा होगी। आपने कोई पूजा-पाठ नहीं किए ?

बदरी—क्यों नहीं ? बड़ा पूजा-पाठ करते हैं, रोज बिला नागा।

रेखा--कुछ हमें भी बताइए, हम भी करें।

पिता—मैं नहीं समझा, तुम्हारा मतलब क्या है ?

बदरी—मैं बताऊँ पण्डित जी, वही भूत की बात ! उस भयानक बादलों की काली रात में जो सुजाता बहन हमें दिखाई दी थी, वही इन्होंने भी देख ली होगी।

पिता—चुप रह, मूर्ख ! क्या भूत वैसा होता है ?

बदरी—तब आपने मेरे मना करने पर भी उस रात को मेरी बात क्यों नहीं मानी ?

पिता—उस रात बड़ी भूल हो गई।

रेखा--वही आज दिन में भी फिर दुहरा रहे हैं आप।

बदरी--हाँ पंडितजी, जरूर वही बात है।

पिता--फिर पश्चात्ताप कैसे होगा उस भूल का ?

रेखा—इस तरह जगह-जगह उनकी तलाश कर और उनका नाम लेकर पूछने से तो उनकी आत्मा इस भूमण्डल पर भटकती रह जायेगी।

चुप रहिए। उनका जिक्र करना तो एक ओर, मन में उनकी याद भी न कीजिए।

बदरी—और उस दिन आपने हमसे उनकी बात किसी से न करने को कहा था। और अब आप खुद ही बहक गए।

[पिता ठंडी साँस भरकर असहाय हो इधर-उधर देखता है]

बदरी—जब मास्टरजी ने इन्हें अपनी बहू समझ लिया तो आपको इन्हें अपनी बेटी समझ लेने में क्या घाटा है?

पिता—लेकिन मैंने जो उसकी साफ आवाज....

बदरी—सुनी थी! भूत दिखाई देता है तो क्या सुनाई नहीं पड़ता? और फिर तुम वही नाम लेने लगे। खबरदार! जितनी बार नाम लोगे भूत जिन्दा होता जायेगा।

पिता—नहीं लूँगा।

[विजय का प्रवेश]

बदरी—मास्टर जी, नमस्ते!

विजय—नमस्ते! **(पिता को हाथ जोड़ता है)** कब पधारना हुआ?

पिता—**(हाथ जोड़कर)** अभी तो।

विजय—आपने पत्र भी नहीं भेजा?

पिता—अचानक कुछ कचहरी के काम से आना पड़ गया। यहाँ तक आकर आपसे मिलकर न जाना भी एक अनुचित बात थी।

विजय—मकान ढूँढने में तो कोई कष्ट नहीं हुआ?

पिता—बदरी का तो देखा था यह मकान। मैं पिछवाड़े की तरफ बहक गया और वहाँ खिड़की पर...

रेखा—पिताजी, मैं आपके भोजन का प्रबन्ध करती हूँ।

पिता—नहीं, नहीं, हम दोनों खा चुके हैं।

विजय—इसके लिए पूछने की जरूरत है क्या? कुछ जलपान और

चाय ले आओ जल्दी से।

पिता--(उठकर) नहीं, भेंट हो गई यह क्या कम है। लेकिन पिछवाड़े उस खिड़की पर···

बदरी—देखिए पण्डितजी, आप बार-बार भूल जाते हैं।

पिता—(सँभलकर) हाँ, ठीक है।

विजय—आपका असबाब कहाँ है ?

पिता—असबाब ही क्या ? यहाँ रहने को थोड़े आए हैं ? साथी स्टेशन पर हमारी राह देख रहे होंगे।

विजय—एक-दो दिन तो रहते यहाँ।

रेखा—पिताजी, ऐसा कोई अन्तर समझने की बात नहीं है। मैं भी तो आपकी पुत्री हूँ।

पिता—कोई अन्तर नहीं, कोई फर्क नहीं। लेकिन मेरे मन में तो उसी खिड़की पर···वही, कोई अन्तर नहीं···

बदरी—पण्डितजी, आपकी जबान में लगाम नहीं।

विजय—बड़ा बदतमीज नौकर है यह आपका ?

पिता—हाँ, मुँहलगा है मेरे। बहुत छुटपन से ही इसका पालन-पोषण किया है।

बदरी--देर न करो, अब गाड़ी का वक्त हो गया।

पिता—अभी हम लोग जल्दी ही फिर आने वाले हैं। तब अच्छी तरह एकाध दिन यहाँ रहेंगे और वह खिड़की···

बदरी—**(पिता का हाथ पकड़ खींच ले जाता है)** टिकट खरीद लिया है। गाड़ी छूट गई होगी तो ?

विजय—कैसी खिड़की की रट लगा दी !

[दोनों बाहर की तरफ देखते हैं। अगला परदा गिरता है।]

दूसरा दृश्य

स्थान—विजय के मकान का पिछवाड़ा।

समय—सन्ध्या।

पिता—(**खिड़की को ताकते हुए आता है**) नहीं, मैं अब उसे भूत कहने का पाप नहीं करूँगा। इसीलिए मेरी आत्मा पिछले चार महीनों से कोस रही है। एक-एक साथ सौ-सौ बिच्छुओं और सर्पों ने मेरे प्राणों को डसा है। इस पर भी मेरी यह निर्लज्ज काया जीवित रह जाना चाहती है। यही है वह खिड़की, इसी पर मुझे वह दिखाई दी थी। मेरी वह मातृहीन बेटी ? शायद वही तिरस्कार जाग पड़ा उसके और उसने खिड़की बन्द कर बदला ले लिया उस ढके हुए द्वार का। फिर पुकारने से शायद जागृत हो जाए उसके मन में पिता की ममता। (**पुकारता है**) सुजाता ! सुजाता !

[**डॉक्टर बिसन आता है**]

डॉ० बिसन—किस सुजाता को पुकार रहे हो ?

पिता—(**सँभलकर**) किसी को नहीं। सुजाता थी एक।

डॉ० बिसन—सुजाता तो मर गई।

पिता—(**क्रुद्ध होकर**) कौन हो तुम ?

डॉ० बिसन—इसी मुहल्ले का रहने वाला।

पिता—सत्य को जानते हो तुम ?······नहीं, तुम्हें कुछ भी मालूम नहीं है। अगर ऐसा होता तो क्या कहते तुम सुजाता मर गई ? (**आवेश में आकर**) नहीं, वह नहीं मरी है। वे सब प्रपंची हैं, जो ऐसा कहते हैं। और उनमें सबसे बड़ा प्रपंची मैं हूँ।

डॉ० बिसन—कौन हो तुम ?

पिता—क्या बताऊँ ? कौन हूँ ? कहते हुए बड़ी लज्जा लगती है। अरे, वह उस रात शीत, श्रम और उपवास की पीड़िता—मैं उसके गौरव को समझ ही न पाया। मैं स्वयं पतित था, मैंने उसे भी पतित समझा। उस पाप की क्षमा माँगना चाहता हूँ उससे। तुम इसी मकान से आ रहे हो क्या ?

डॉ० विसन—(**भाग जाना चाहता है**) नहीं, मैं कुछ नहीं जानता।

पिता—(**उसका हाथ पकड़ लेता है**) नहीं, तुम्हें जरूर मालूम है।

डॉ० बिसन—कह तो रहा हूँ, वह मर गई। मरे हुए को ढूंढना मूर्खता है।

पिता—तुम्हारे मुख पर यह सच्चाई की आवाज नहीं जान पड़ती।

बदरी—(**दौड़ता हुआ आता है**) डॉक्टर साहब, डॉक्टर साहव, आप खूब मिले। समझा दीजिए इन्हें।

डॉ० बिसन—कौन हैं ये ?

बदरी—मास्टरजी के पुराने सुसर।

डॉ० बिसन—मुझे जो मालूम था कह दिया इनसे। अब अधिक समझाना तुम्हारा काम है। (**चला जाता है**)।

बदरी—चलो, मैं उधर ढूंढता रहा और तुम इधर खिसक आये।

पिता—(**फिर खिड़की की तरफ पुकारकर**) सुजाता ! सुजाता !

बदरी—मैं कहता हूँ, यह कैसा पागलपन खुल गया तुम्हारे ? किसी का यकीन ही नहीं। डॉक्टर साहब थे ये। मरने-जीने की इनकी गवाही भी झूठी हो गई क्या ? जल्दी ही आ जाने को कहा था साथियों ने। अब देर न करो, नहीं तो गाड़ी छूट जाएगी।

पिता—एक गाड़ी छूट गई तो दूसरी मिल जाएगी। एक बार की बिछुड़ी हुई सुजाता बड़ी मुश्किल से मिली है, यदि अब छूट गई तो फिर कभी न मिलेगी। (**दीवार पर चिपट जाता है और अपना सिर**

रख देता है)।

बदरी--क्या हो गया तुम्हें ?

पिता—(**फिर खिड़की की तरफ देखकर पुकारता है**) सुजाता ! मैं बड़ा पापी हूँ। मेरे अपराध क्षमा करो और मेरी इस पुकार का उत्तर दो।

बदरी—तेरहवीं हो चुकी, डॉक्टर साहब ने कह दिया, जमाता ने दूसरी शादी कर ली और नई वहू कहती है सौत मर गई।

पिता—उसका स्वार्थ है, जरूर उसने सौत को नौकरानी बनाकर छिपा रखा है।

बदरी—चलो, मास्टर जी से पूछ लें।

पिता—वह अपनी नई वहू का साथ छोड़कर क्यों हमारी सहायता करेंगे ? (**फिर पुकारता है**) सुजाता ! सुजाता !

बदरी—(**पण्डितजी का हाथ पकड़कर खींचता है**) चलो न ! क्या कहेंगे लोग ?

पिता—करने दे मुझे अपने पाप का प्रायश्चित। (**फिर दीवार से चिपट जाता है**)।

बदरी—जरूर तुम्हारा दिमाग खराव हो गया ! पुलिस को बुला कर लाता हूँ, नहीं तो डॉक्टर साहव को। (**जाता है**)।

पिता—सुजाता और मास्टरजी के बीच में जरूर कोई खटपट हो गई। आसानी से दूसरा विवाह करने के लिए वह जीते-जी मार डाली गई······ओह ! उसकी उस रात की परवशता मेरी समझ में नहीं आई। पिता का तिरस्कार पाकर फिर उसे यहीं आना पड़ा। बिना वेतन की नौकरानी होकर शरण मिल गई होगी उसे यहाँ। (**पुकारता है**) सुजाता ! सुजाता ! इस शहर की जीते-जी मौत से मेरा गाँव क्या बुरा है ? वहाँ की मिट्टी उपजाऊ, साफ हवा और मीठा पानी है।

सुजाता ! सुजाता !

[रेखा ऊपर की खिड़की खोलती है]

पिता—खिड़की पर आवाज तो हुई।

रेखा—पिता ! पिता !

पिता—अन्त में आ ही गई न ? सुजाता ! (**सुजाता की आशा में रेखा को पाकर**) कौन हो तुम ? (**निराश होकर**) नहीं हो।

रेखा—पिताजी, आपकी इन पुकारों को सुनकर मुहल्ले वाले क्या कहेंगे ?

पिता—मुझे पुकारने दो। मैं रोकर अपनी आँखें नहीं फोड़ सकता।

रेखा—शब्द के जगत से दूर चला गया प्राणी, क्या आपकी पुकार पर लौट आयेगा ?

पिता—तुमने कहीं छिपा रखा है उसे। उसके पति को भले ही तुम ले लो, पर मेरी बेटी मुझे लौटा दो।

रेखा—पिताजी, मैं सुजाता दीदी की तरह आपकी सेवा करने को तैयार हूँ, फिर आपको मुझे वही पद दे देने में क्यों संकोच है ? (**खिड़की बन्द कर लेती है**)।

[**डॉ० बिसन को हाथ पकड़कर लाते हुए बदरी का प्रवेश**]

बदरी—यह देखिए इनका दिमाग ही तो खराब हो गया है न ? कोई दवा देकर ठीक कर दीजिए इन्हें जल्दी से, नहीं तो गाड़ी छूट जायेगी।

डॉ० बिसन—चलिए आप मेरे साथ।

पिता—कौन हैं आप ?

बदरी—यही तो डॉक्टर साहब हैं। अभी तुम्हें समझा गए।

पिता—(**बड़ी दयनीयता से हाथ जोड़कर**) लेकिन मेरी समझ

में कुछ भी नहीं आया।

डॉ० बिसन—चलिए अस्पताल में मेरे।

पिता—क्यों, मैंने क्या कसूर किया है ?

डॉ० बिसन—वहाँ ले जाकर आपका वहम दूर कर दूंगा।

बदरी—दिल या दिमाग में की खराब नस काट दी जायेगी।

पिता—**(घबराकर)** नहीं, डॉक्टर साहब, अब कोई जरूरत नहीं, मैं वैसे ही ठीक हो गया।

बदरी—चलो फिर, नहीं तो गाड़ी छूट जायेगी। **(पण्डितजी का हाथ पकड़ खींच ले जाता है)**।

[डॉ० बिसन हँसते हुए दूसरी ओर चला जाता है। पर्दा गिरता है।]

तीसरा दृश्य

स्थान—विजय की बैठक।

समय—संध्या।

[कमरे में अँधेरा है। बाहर से विजय द्वार खटखटाता है।]

विजय—(बाहर से) खोलो !

रेखा—(भीतर से) दीदी, खोल दो द्वार।

[सुजाता भीतर से घूँघट काढ़े हुए आती है। बैठक की बिजली जलाकर द्वार खोलती है और उल्टे पैरों भीतर भागने लगती है।]

विजय—(कमरे में प्रवेश करते हुए) मैं क्या कोई हिंसक पशु हूँ, जो तुम मुझे देखकर ऐसे भागने लगती हो। हमारी जो सन्धि और समझौता हुआ है, उसके अनुसार खड़ी रहो।

[सुजाता पीठ फिराकर खड़ी हो जाती है]

विजय—(कुर्सी पर बैठते हुए) रेखा ने आज ही तुम्हारे बदले प्रतिज्ञा की है कि तुम अब मेरे सामने से भागोगी नहीं, मैं जो कहूँगा वही करोगी। सामने मुँह करो।

[सुजाता उसी तरह खड़ी रहती है]

विजय—घबराओ नहीं। मुझे भी अपनी प्रतिज्ञा याद है, तुम्हारे घूँघट को हाथ न लगाऊँगा। फिर मेरा कहना मानने में क्या आनाकानी है ? सामने मुँह करो।

[सुजाता सामने मुँह करती है, लेकिन घूँघट कुछ और लम्बा कर लेती है।]

विजय—रेखा कहाँ है ?

[सुजाता घूँघट कुछ और लम्बा कर लेती है]

विजय—मुझे तुम्हारे घूंघट या मौन किसी से भी कोई शिकायत नहीं है। मेरी बात का जवाब 'हाँ' या 'नहीं' से तो दे सकती हो। इन्हीं दो ध्रुवों पर सारा जगत् फैला हुआ है। शब्दों का मोह भी नहीं मुझे। इनके संकेत तो हैं तुम्हारे सिर में ? उत्तर दो रेखा कहाँ हैं ?

[सुजाता चुप रहती है]

विजय—क्या बाजार गई हैं ?

[सुजाता सिर हिलाकर 'नहीं' का संकेत देती है]

विजय—तुम्हारी भावना पकड़ ली मैंने। पड़ोस में कहीं गई हैं क्या !

[सुजाता सिर हिलाकर 'हाँ' और 'नहीं' दोनों के संकेत देती है।]

विजय—'हाँ' और 'नहीं' दोनों ? इसी सम्मिश्रण का नाम संशय है। **(कुछ चिन्ता में पड़कर प्रसन्न हो जाता है)** तुमने आज मेरी मेज ठीक नहीं की ?

[सुजाता पीठ फिराकर मेज पर की किताबें ठीक से लगाती हैं।]

विजय—देखता हूँ, मेरी आकांक्षा के किसी निश्चित अनुपात में तुम्हारे इस घूंघट की लम्बाई है। जब जितनी उत्कट इच्छा तुम्हें देखने की हो जाती है, तब उतना ही दीर्घ मैं इसे पाता हूँ। इसी गणित पर जिस दिन मेरी सारी कामना अस्त हो जाएगी, तुम्हारा यह आवरण दूर न हो जाएगा क्या ?

[सुजाता मेज पर की चीजों को सहेजकर फिर कुछ दूरी पर विजय के सामने सिर नीचा कर खड़ी हो जाती है।]

विजय—ठीक कर दी मेज ?

[सुजाता सिर हिलाकर 'हाँ' प्रकट करती है]

विजय—मैं मेज की ओर दृष्टि कर भी इस उत्तर को और भी स्पष्ट जान सकता था, पर तुम्हारी भावना के द्वारा! **(मेज पर देखकर)** बहुत सुन्दर ! मुझे प्यास लगी है।

[**सुजाता धीरे-धीरे भीतर चली जाती है**]

विजय—किस सुरुचि और कला से मेज सजा दी गई! जिस चीज को जहाँ पर होना चाहिए वहीं पर तो, ठीक मेरे मन के अनुसन्धान पर ! मानो मेरे विचारों के साथ इस नई महराजिन का कोई पुराना परिचय हो। भिन्न-भिन्न जन्मों में क्या हम बीते जन्मों के साथी नहीं हैं ?

[**सुजाता घूंघट काढ़े, साड़ी में छिपाए गए हाथों से पानी का गिलास लेकर आती है।**]

विजय—बड़ा कष्ट हुआ। **(उसके हाथ से गिलास ले लेता है)** धन्यवाद ! **(ढके हाथों को देखकर)** हाथों में भी घूंघट ? क्या नाम है तुम्हारा ?

[**सुजाता पीठ फिराकर जाने लगती है**]

विजय—जवाब देकर ही जाना होगा।

[**सुजाता वहीं ठहर जाती है**]

विजय—किसी फूल के नाम पर है क्या ?

[**सुजाता सिर हिलाकर नहीं कहती है**]

विजय—फिर किसी नदी के नाम पर ?

[**सुजाता फिर 'नहीं' का संकेत देती है**]

विजय—फिर किसी देवी का नाम ?

[**सुजाता निःस्पंद खड़ी रहती है**]

विजय—उमा, रमा ?

[**सुजाता निश्चल खड़ी रहती है**]

विजय—(धीरे-धीरे) सीता, सावित्री ? तारा, दुर्गा ? लक्ष्मी, सरस्वती ?

[सुजाता कोई उत्तर नहीं देती]

विजय—न जाने क्यों मेरे मन में तुम्हारे लिए बड़ी दया जाग उठी। मैं नहीं चहता तुम्हारा यह जीवन चूल्हे-चौके को ही समर्पित हो जाय। मैं तुम्हें पढ़ाने-लिखाने की इच्छा रखता हूँ कि किसी स्कूल में अध्यापिका होकर तुम अपना मार्ग सुगम कर दूसरों को भी प्रकाश दे सको।

[सुजाता उस प्रस्ताव के विरोध में सिर हिलाती है]

विजय—रेखा सहमत है इस प्रस्ताव पर, कालान्तर में तुम भी हो जाओगी। एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ बहुत दिन से। पति के साथ तुम्हारी अनबन का क्या कारण था ? तुम्हारा हठी स्वभाव या उनका निर्दय व्यवहार ?

[सुजाता कोई उत्तर नहीं देती]

विजय—'हाँ' या 'नहीं' के संकेत में उत्तर न खुल सकेगा। शब्द काम में लाने ही पड़ेंगे। जब मौन तुम्हारा व्रत नहीं है, न गूँगापन स्वभाव, तो बताती क्यों नहीं इस परित्याग का कारण ? हम न्यायालयों का उपयोग करेंगे।

[सुजाता चुप रहती है]

विजय—बोलो न। तुम्हारे ही लाभ की बात है। यदि तुम निर्दोष हुई तो सरकारी न्याय से तुम्हें आर्थिक सुभीता ही नहीं, तुम पर पड़ा हुआ सारा लांछन धुलकर साफ हो जायेगा। पास-पड़ोस और मित्र-सम्बन्धियों में जो तुम्हारी सच्ची-झूठी बदनामी फैली है वह सब दूर हो जायेगी।

[सुजाता सिर हिलाकर 'नहीं' प्रकट करती है]

विजय—तब तुम्हारा ही पलड़ा अपराध का भारी है !

[सुजाता विरोध में सिर हिलाती है]

विजय—तब तुम्हारे रूप की विकृति जान पड़ती है। (**धीरे-धीरे उठकर उसके पास जाता है**)।

[सुजाता भीतर भाग जाना चाहती है। विजय उसको पकड़कर उसका घूंघट खींच लेता है। उसके मुँह पर भूत का चेहरा पहना दिखाई देता है। सुजाता हाथ छुड़ाकर भीतर भाग जाती है। चारपाई के नीचे से धीरे-धीरे रेखा बाहर निकलती है।]

विजय—(**चिल्लाता है**) भूत ! भूत !

रेखा—(**ललकारती है**) **क्या ? क्या ?** यह कैसी निर्लज्जता ? लज्जा नहीं आई ? पराई नारी का स्पर्श !

विजय—(**रेखा को चारपाई के नीचे से निकलते हुए देखकर**) तुम यहीं छिपी पड़ी थीं ? बड़ी दुष्ट हो !

रेखा—मैं हूँ दुष्ट ? तुम हो दुष्ट !

विजय—रेखा, केवल एक परिहास।

रेखा—नारी की सबसे बड़ी सम्पत्ति, उसके शील से तुम परिहास कर सकते हो। अगर यही बरताव कोई मुझसे करता तो ? तुम्हारे है इतनी उदारता, इतनी सहन-शक्ति ?

विजय—भगवान् साक्षी हैं, रेखा। दृष्टि और भावना में कोई विकार नहीं मेरे।

रेखा—केवल एक बनावट ! जो मनुष्य व्यवहार में इतना नीचे उतर सकता है, कैसे वह भावना में प्रतिष्ठित माना जायेगा ?

विजय—यह किस भूत को जगह दे दी तुमने ?

रेखा—तुम्हारे इस असंयम से उसकी रक्षा करने को मैंने भूत का चेहरा पहना दिया उन्हें। मास्टर साहब, आप यहाँ तक आगे बढ़

जायेंगे, मैं नहीं जानती थी।

विजय—रेखा, मैं अपने अपराध की क्षमा चाहता हूँ।

रेखा—उन्हीं से माँगो। लेकिन कभी तुमने भी किसी को क्षमा किया है ? सोचकर उत्तर दो।

विजय—**(सोचने के बाद)** जैसे मेरी कोई चीज खो गई है, मैं उसी को ढूंढ रहा था। मैं उसी को ढूंढ रहा हूँ।

रेखा—किसे ढूंढ रहे हो ?

विजय—लक्ष्य और उद्देश्य भी भूला गया। केवल एक असफल खोज ही शेष है। मेरी नीयत में कोई अन्तर नहीं। मैं उन्हीं के लाभ के लिए उनसे कुछ पूछ रहा था।

रेखा—मेरी मार्फत क्यों नहीं पूछा ?

विजय—बताओ तुम्हीं। इनके पति ने क्यों इनका परित्याग कर दिया ? अपराधी को फिर दूसरी नारी पर अत्याचार करने के लिए खुला ही छोड़ दिया जाय। यह भी महान् अपराध है। क्यों न उस पर अभियोग चलाया जाय ?

रेखा—वह नहीं चाहती हैं, इस तरह उनके घर का एक निजी झगड़ा, बाजारों की बहसों, गाँवों की अफवाहों, न्यायालय की दलीलों और अखबारों की कालिमा में प्रकट हो।

विजय—अच्छा, मेरे अपने कौतूहल को मिटाने के लिए तो बताओ ?

रेखा—तुम अपने ही से क्यों नहीं पूछ लेते ?

विजय—**(घबराकर)** क्या ? क्या ? अपने से क्या पूछूं ?

रेखा—तुमने भी तो अपनी पहली पत्नी से कुछ ऐसा ही मिलता-जुलता व्यवहार किया था।

विजय—कौन कहता है ?

रेखा—सत्य को कौन कहता है ? वह अपने ही उजाले पर

प्रकट है।

विजय—पड़ोसियों के यहाँ तुम बराबर मेरी ही बुराई सुनाती रहीं।

रेखा—कदापि नहीं, कोई अक्षर नहीं।

विजय—तब स्वयं ही मेरे पाप को मेरे अधरों पर खुल जाना पड़ेगा। रेखा, मैं अपराधी हूँ। और मैं क्षमा भी न दे सका। मैं पापी हूँ। और इतने दिन से छिपाए गए इस पाप से मेरी आत्मा भी कलुषित हो गई। बड़े विष-भरे कीटाणु हैं उसके।

रेखा—किसके ?

विजय—मेरे पाप के और किससे ? वह शान्त और सुशीला नारी, मैंने रोज-रोज की शंकाएँ उस पर जमाकर उसे मार डाला !

रेखा—किसे ?

विजय—अपनी देवी-तुल्य पहली पत्नी को। तुमने ठीक ही कहा है, मैं किसी को क्षमा नहीं कर सका ! रेखा, क्या वह मिलेगी इस जीवन में फिर कभी ?

रेखा—मृत्यु के उस पार जाकर फिर कौन लौटा ?

विजय—वह लौटकर आई थी, रेखा, मैं ही वह अभागा हूँ जो उसे पहचान ही न सका। उसके छिन्न-भिन्न रूप और वेश को मैंने उसकी आत्मा की मलिनता समझा। नारी को प्रकृति ने पराजिता ही पैदा किया है। पुरुष को अपने बल का लाभ मिला। करुणा जगाने के बदले उससे अपने अत्याचार बढ़ा लिए। उसके भीतर मेरे प्रेम का अमर दीप जल रहा था, मैं पहचान ही नहीं सका। मैंने उसे लात मारकर बुझा दिया !

रेखा—यह क्या कहते हो ? और वह स्टोव का एक्सीडेंट ?

विजय—वह मेरी पाप-कल्पना !

रेखा—तो क्या तुमने उन्हें घर से निकाल दिया ?

विजय—(**उदास होकर कुर्सी पर पड़ जाता है**) मेरे मन के अंधकार में जीवन की सबसे भयानक स्मृतियाँ खुल पड़ी हैं। इस समय मुझे केवल मेरे ही साथ रहने दो।

[**रेखा भीतर चली जाती है। उदास मुद्रा में डॉक्टर बिसन आता है।**]

डॉ० बिसन—(**कुर्सी में बैठते हुए**) क्यों मास्टर, कैसे हाल हैं ? कुछ उखड़े और बिखरे हुए-से पड़े हो। (**बड़ी पीड़ा के साथ अपनी दाढ़ दबाता है**) ओ···हो···हो···हो ! गृह-युद्ध में पड़ गए क्या ? श्रीमती जी से हो गई खटपट किसी बात में ? (**विजय का हाथ पकड़ता है**)।

विजय—तुम्हें तो इस घरेलू कलह से छुट्टी मिली हुई है। इसी से दूसरों की खिल्ली उड़ाते रहते हो। लेकिन स्वर में तुम भी नहीं जान पड़ते आज।

डॉ० बिसन—हाँ भाई, विपक्ष जब हमारे बहुत निकट आ जाता है, इतने निकट कि हमारा अविभक्त अंग बन जाता है, तब उसे रोग नाम दिया गया है।

विजय—डॉक्टर, उसी के प्रतिकार के लिए तो तुम्हारा अस्तित्व है। क्या हो गया ?

डॉ० बिसन—(**उदास स्वर में**) दाढ़ का दाँत बड़ा दिक कर रहा था। आज खुद ही मैंने उसे जड़ से उखाड़ डाला है।

विजय—चलो, आँख फूटी, पीड़ा गई।

डॉ० बिसन—अगर तुम्हें अपने गृह-युद्ध में सीधी सन्धि करनी नहीं है, तो चलो कहीं घूम आयें। घर के भीतर तुम्हारी शून्यता से तुम्हारी कीमत बढ़ जाएगी। (**फिर दाढ़ पकड़कर**) ओ हो, हो ! मेरा भी ध्यान बँट जायेगा।

विजय—मैंने दूसरों के दृष्टिकोण के लिए भी अपनी भावना में जगह बना ली है। इसलिए मित्र, नई सन्धियों की कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती। लेकिन पुराना विग्रह, बड़ी गहरी उसकी फाँस प्राणों में गड़ गई है।

डॉ० बिसन--चलो, उसी को भुला आयें। **(पुकारता है)** अजी रेखा जी, मैं तुम्हारे मास्टर साहब को अपने साथ घुमाने ले जा रहा हूँ। न-जाने कब लौटें, द्वार भीतर से बन्द कर लेना।

[दोनों का प्रस्थान। रेखा सुजाता के मुख पर का चेहरा देखती हुई आती है।]

रेखा—चले गए दोनों। **(द्वार पर सांकल देती है और फिर सुजाता के मुख पर का चेहरा खोलकर)** मनुष्य जितना बली है उतनी ही तेजी से वह अपने कौतूहल की तरफ बढ़ता है। प्रतिक्रिया के हो जाने पर वह सबसे पहले पश्चाताप की ओर दौड़ता है। सुना नहीं तुमने ?

सुजाता—नहीं।

रेखा--उन्होंने अपने पाप को स्वीकार किया है और आज पश्चाताप की आग में उनके सारे सन्देह भस्म हो गए हैं। अब ढूंढने लगे हैं वह तुम्हें दसों दिशाओं में। दीदी, अब खोल दो अपना रहस्य और उठा लो अपना घूंघट।

सुजाता—नहीं, मैं किसी से कुछ माँगती नहीं हूँ और किसी को देना भी नहीं चाहती अपना भेद। मैंने बड़े पक्के बन्धन में अपनी आकांक्षाएँ समेट ली हैं। मत बिखराओ उन्हें।

रेखा--दीदी, सुनो तो सही। **(सुजाता का हाथ पकड़कर उसे एक कुर्सी में बिठाती है)** तुम्हें देखने और प्राप्त करने के लिए वह पागल-से हो उठे हैं।

सुजाता—कुछ न सुनाओ मुझे अधिक, मेरा लालच न बढ़ाओ।

तुमने बहुत दे दिया मुझे। उस ग्रन्धकार से इस प्रकाश के जगत में जब मैं तुम दोनों का अनुराग सुन पाती हूँ तो फिर-फिर जीवित हो उठती हूँ। न-जाने कहाँ पर··· हैं मेरे प्राण ? और अब क्या चाहिए ? इतना कम है ?

रेखा--नहीं, नारी के ललाट पर का लांछन मिटाना होगा तुम्हें।

सुजाता—कैसा लांछन ?

रेखा--यह व्यक्तिगत अत्याचार नहीं, तुम्हें अपनी जाति की प्रतिहिंसा का विचार होना चाहिए।

सुजाता—हाँ, ठीक कह रही हो तुम। बिना अपराध के ही परित्याग ? कितना पुराना इतिहास है पुरुष के इस पाप का, इस संशय और अविश्वास का ?

रेखा—और नारी को पुरुष पर अविश्वास करने का कोई अधिकार ही नहीं। लेकिन इस दिशा में हम ये विवाद के प्रश्न सँभालकर रख दें। आज मैं कुछ दूसरी ही बात सोच रही हूँ।

सुजाता—मैं तुम्हारी बात समझ गई और मुझसे मेरे लोभ का अब संवरण नहीं हो सकता।

रेखा—आज मैं तुम्हारे ऊपर पड़ा हुआ मृत्यु का आवरण खींच लेती हूँ।

सुजाता—और मेरे मन में भी उनके मुँह से यह सुन लेने की बड़ी साध है। बहन, क्या वह कह देंगे ?—'सुजाता, तू निर्दोष है।'

रेखा--हाँ, वह तुमसे क्षमा माँगने को तैयार हैं। चलो, मैं शृंगार कर दूँगी इस अवसर के उपयुक्त ! आज नए जन्म में तुम्हारा नया विवाह है।

सुजाता--खूब याद आई ! **(कुछ याद कर)** नीचे रसोईघर की कार्निस पर ! बहन, मैं अभी आती हूँ। **(दौड़कर भीतर चली**

जाती है) ।

रेखा—क्या भूल आईं वहाँ ? टॉर्च लेती जाओ ।

सुजाता--(**भीतर से**) कोई आवश्यकता नहीं ।

रेखा—वल्व खराब हो गया वहाँ का ।

सुजाता--(**भीतर से**) अभी तो आ पहुँची । चाँदनी है ।

रेखा—मिलन का कैसा उत्साह हो गया ! पति की परित्यक्ता नारी को । अँधकार और ठोकर का मानो कोई अस्तित्व ही नहीं । फिर मौत से लड़कर जी उठने की प्रसन्नता ! उसका अनुभव किसे हो सकता है ?

सुजाता—(**हाथ में एक अँगूठी लेकर दौड़ती हुई आती है**) मिल गई ।

रेखा—क्या ले आई ?

सुजाता--मेरे विवाह की अँगूठी । अँगुली में ढीली पड़ जाने से उतारकर रख दी थी । तुम्हारे विवाह की ध्वनि से उनकी याद उभर आई और शायद शकुन्तला की अँगूठी की तरह यह उनके मन से मेरी विस्मृति मिटा देने में सहायक हो जाय । (**एक टीस के साथ पैर की अँगुली दबाती है**) ।

रेखा--पैर की अँगुली में क्या हो गया है ?

सुजाता--आँगन में किसी लकड़ी की नोक चुभ गई ।

रेखा--देखो, शायद रक्त निकल रहा है ।

सुजाता--(**बड़े उत्साह के साथ पैर पर से हाथ हटा लेती है**) ओह ! कुछ नहीं । (**अँगूठी पहन लेती है**) ।

रेखा--चलो, मैं तुम्हें पहनने के लिए कपड़े दे दूँ ।

[दोनों पास ही के कमरे में जाती हैं]

सुजाता--(**भीतर से**) बहन, कैसे पहन लूँ तुम्हारे ये कपड़े ?

रेखा—(भीतर से) आज से मेरा और तुम्हारा—ये दो स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं रहे, आज से हम दोनों एक हो गए। मेरे वेष में तुम्हारा रूप! इसमें मृत्यु और जीवन का एकीकरण है, इसमें भूत और वर्तमान का विलय है। तुम कपड़े पहन लो जल्दी से, मैं बाहर बैठक को ठीक करती हूँ। (**बैठक में आकर उसकी अस्त-व्यस्त चीजों को ठीक करने लगती है**)।

सुजाता—(भीतर से) मैं कहती हूँ ये आभूषण पहनने की क्या आवश्यकता है?

रेखा—तुम्हारे ही तो हैं ये।

सुजाता—(भीतर से) अधिक विस्तार न दूंगी। मन और शरीर की दुर्बलता छिपाई जाती है वस्त्र और आभूषण में। नारी की सबसे बड़ी शोभा उसका शील है। मृत्यु से लड़कर भी मैंने उसकी रक्षा की है।

रेखा—तुम धन्य हो! तुम्हारी जय हो, दीदी!

सुजाता—(भीतर से) यह सब तुम्हारी ही कृपा है।

रेखा—बार-बार यह पैर की अँगुली क्यों दबा रही हो तुम? मैंने कहा न था, टॉर्च ले जाओ।

सुजाता—(भीतर से) फाँस चुभ गई एक, स्वयं ही निकल भी गई।

रेखा—स्टोव के पास स्प्रिट की बोतल रखी है। थोड़ी-सा लगाओ अँगूठे में। कुछ तेज लगेगी जरूर, पर पकने का कोई डर न रहेगा।

सुजाता—(भीतर से) उनके वियोग के इन छः महीनों में पैरों के काँटों की क्या गिनती है, हृदय में शत-शत शूल बिंधे हैं मेरे।

रेखा—आज वे सभी शूल फूलों में खिल उठेंगे। सुख-दुख की यही

चक्रमयी गति है । इनमें दुःख की पहली बारी क्या बुरी है ?

[सुजाता शृंगार कर सकुचाती हुई आती है, फिर वही लम्बा घूंघट काढ़े ।]

रेखा--फिर वही इतना लम्बा घूंघट कैसा ? (उसको एक हाथ से दर्पण दिखाती है, दूसरे से उसका घूंघट उठा देती है देखो, कैसा चमक उठा है तुम्हारा रूप !

[सुजाता एकाएक भूमि पर बैठ जाती है]

रेखा—(उसे सँभालकर) क्यों दीदी, क्या हो गया ?

सुजाता—कुछ नहीं । (उठ जाती है) सिर में चक्कर-सा अनुभव किया ।

रेखा—शायद हर्ष का अतिरेक !

सुजाता—नहीं कह सकती । (फिर बैठ जाती है) ।

रेखा--दीदी !

सुजाता--फिर माथा घूमता-सा जान पड़ता है ।

रेखा--दीदी, तुम यह कैसा कर रही हो ? प्रियतम की इस मिलन-वेला में किसी रोग और शोक का क्या काम ? वे फूंक मारकर उड़ा दिए जा सकते हैं । आज समस्त संशय नष्ट हो जायेंगे और तुम चन्द्रमा-सी काले बादलों को चीरकर ही बाहर न निकल आओगी, तुम्हारे मुख पर पड़े हुए सब कलंक के छींटे भी धुल जाएँगे ।

सुजाता - कैसी अमृत-भरी तुम्हारी यह वाणी है । मैं जी उठी ! मैं जी उठी ! (फिर उठ जाती है) न-जाने कितनी देर में आयेंगे वह ?

रेखा--जब मन में कोई मैल न रहा तो फिर उन्हें आया ही समझो ।

सुजाता--अगर मैं सो गई तो ?

रेखा--यह क्या कह दिया तुमने ?

सुजाता—(**बड़ी पीड़ा के साथ**) क्या कहूँ, बहन, बड़ी मादकता-सी अनुभव कर रही हूँ।

रेखा—यह मिलन के हर्ष की मादकता है।

सुजाता—सो जाने की इच्छा हो रही है।

रेखा—कैसी बैरन यह नींद हो गई? हर्ष के आँसू की तरह उमड़ आई तुम्हारी आँखों में?

सुजाता—थोड़ा सहारा दे दो, बहन।

रेखा—(**उसका हाथ पकड़कर चारपाई पर बिठा देती है**) इतने दिनों तक अपने भेद को छिपा देने की चिन्ता से कभी सो भी न सकीं। आज निर्भय और निश्चिन्त हुई हो। इसी से इतने दिनों का जागरण एक साथ ही टूट पड़ा पलकों पर।

सुजाता—तुमने मेरे हृदय की भारी पीड़ा शान्त कर दी। बहन, तुम्हारा भला हो। (**शैया में सोते हुए**) बड़ी नींद! बड़ी नींद! आँखें भारी हो गईं। (**तकिए पर सिर रख देती है**)।

रेखा—सो जाओ तब तक। उनके द्वार खटखटाने पर खोल देना। देखें, फिर क्या कहते हैं वह जीवन के इतने बड़े आश्चर्य को पाकर।

सुजाता—(**उनींदे स्वर में**) बहन, लेकिन शहर और मुहल्ले वालों को कैसे समझाई जायेगी यह बात—यह मौत के बाद का जीवन?

रेखा—यह मैं सब ठीक कर लूँगी। अच्छा मैं जाती हूँ।

सुजाता—(**उनींदे स्वर में**) कहाँ?

रेखा—भण्डार-घर में तुम्हारी खटिया पर तुम्हारे कपड़े पहन तुम्हारी ही तरह घूँघट काढ़े सो रहूँगी। वास्तविकता के इस उलटफेर पर देखें वह क्या कहते हैं? (**भीतर चली जाती है बिजली बुझाकर**)।

सुजाता—(**टूटते हुए स्वर में**) दीदी!

रेखा—(**भीतर से**) मैं तुम्हारे कपड़े पहन रही हूँ।

सुजाता--(अस्पष्टता से) हाँ ऽ ऽ !

रेखा--(भीतर से) दीदी ! क्या आ गई नींद ?

सुजाता--(क्षीण स्वर में) हाँ ऽ ऽ ऽ ऽ !

विजय--(बाहर से द्वार खटखटाता है) द्वार खोलो। (भीतर से कोई उत्तर न मिलने पर फिर द्वार खटखटाता है) खोलो !

रेखा--(सुजाता के वस्त्र पहनकर भीतर से आकर सुजाता को झकझोर कर उठाती है। फिर धीमे स्वर में कहती है) दीदी ! उठो, वह आ गए। (बिजली जलाती है)।

[सुजाता अचेत पड़ी है, नहीं उठती]

विजय--(फिर बार-बार बाहर से द्वार खटखटाकर) रेखा ! रेखा ! सो गईं क्या इतनी जल्दी ?

[रेखा जल्दी से सिटकनी खोल भीतर भाग जाती है]

विजय--(द्वार खोलकर भीतर प्रवेश करता है। कुर्सी में बैठकर जूता खोलते हुए बिना उसकी ओर देखे) सिटकनी खोलकर फिर सो गईं ? क्यों ? क्या बात है ? जी अच्छा नहीं है क्या ? (उसके निकट जाकर ओढ़ना हटाता है। साड़ी से मुँह ढकी सुजाता पड़ी दिखाई देती है) कपड़े भी नहीं बदले सोते समय। (कोई उत्तर न पाकर) नाराजी का तो कोई सबब नहीं हो सकता। फिर क्या तुम्हें कोई बीती बात याद आ गई ? तुम उत्तर क्यों नहीं देतीं ? (उसके मुख पर से साड़ी का छोर हटाकर) क्यों ? (रेखा की जगह किसी दूसरे को पाकर चकित हो जाता है) कौन ? कौन हो तुम ? मेरे धूमिल अतीत को छेदकर रेखा, तुम यह किसमें बदल गई हो ? सुजाता ! सुजाता ! मुझे क्षमा कर देने में फिर क्या संकोच ? (उसे अचेत पाकर चिल्लाता है) रेखा ! रेखा !

रेखा--(भीतर से घबराई हुई आती है) क्या हो गया ? (सुजाता का सिर उठाकर) क्या हो गया इन्हें ? अभी ठीक थीं। मुँह से फेन

निकल रहा है।

विजय--महराजिन को बुलाओ। **(चप्पल पैर में डालता है)।**

रेखा--यही हैं वह ?

विजय--**(कातर स्वर में)** क्यों छिपा दीं अब तक ?

रेखा--उस मृत्यु की लोहे की चादर छेद न सकी थीं।

[विजय तेजी से बाहर चला जाता है]

रेखा--**(सुजाता को उठाकर)** उठो, दीदी ! जिनके नाम की तुम रात-दिन माला जपती चली आई हो वह आ गए। वह द्वार खटखटाते ही रह गए। तुमने क्यों ऐसी उपेक्षा की उनकी ? वह तुमसे क्षमा माँगने को तैयार हैं, तुम क्या इस प्रकार मान और अभिमान करोगी ?

[विजय दौड़ते-हाँफते हुए डॉ० बिसन के साथ आता है]

डॉ० बिसन--**(सुजाता की परीक्षा करते हुए)** कौन ? यह तो सुजाता हैं।

विजय--अगर इन्हें जिला सको तो, नहीं तो डॉक्टर यह मेरे द्वारा की गई नर-हत्या है।

डॉ० बिसन--घबराओ नहीं. मैं प्राणपण से जिला दूँगा इन्हें। क्या हुआ था ?

रेखा--मैं क्या बताऊँ ?

डॉ० बिसन--बराबर डूबती चली जा रही हैं। क्या खाया था खाने को ? किसके साथ ?

रेखा--आज सोमवार का व्रत था, हम दोनों ने साथ-साथ दिन में ही भोजन कर लिया था।

डॉ० बिसन--और कोई खास बात ?

रेखा--पैर की अँगुली में एक फाँस चुभ गई थी।

डॉ० बिसन--किस अँगुली में ? **(पैर देखकर)** सारा पैर भी नीला

पड़ गया ! (**अँगुली देखकर**) ये दोहरे दाँत हैं ! साँप के ! (**सिर पीटकर**) अब क्या होगा ?

विजय—साँप कहाँ से आ गया ?

डॉ० बिसन—(**निराश हो भूमि पर बैठ जाता है**) हे भगवान् !

रेखा—(**रोती है**) हे भगवान् !

विजय—डॉक्टर, तुम डॉक्टर होकर ऐसी निराशा उपजाते हो ?

डॉ० बिसन—(**उठकर खड़ा हो जाता है**) नहीं।

विजय—बचा दो (**डॉक्टर के पैर छूकर**) नहीं तो फिर कौन क्षमा करेगा इस पापी को ?

डॉ० बिसन—(**फिर आशा में भरकर सुजाता की नाड़ी हाथ में लेकर**) क्या बता दूँ मित्र, बड़े जहरीले कीड़े ने काटा है इन्हें। देर हो गई और मेरे पास इनके इंजेक्शन नहीं हैं।

विजय—शहर में तो मिलेंगे ?

डॉ० बिसन—जाओ देखो। अपने मित्रों की मदद लो। टेलीफोन खटखटाओ। ढूँढने पर क्या नहीं मिल जाता ?

[**विजय भागकर चला जाता है बाहर को। डॉ० बिसन फिर परीक्षा करता है और माथा पकड़कर खड़ा हो जाता है।**]

रेखा—डॉक्टर साहब, आप कैसे डॉक्टर हैं ? दीदी को बचा नहीं सकते ?

डॉ० बिसन—दवा के हाथ है। देखो जो दवा मिल गई।

रेखा—जड़ता का भरोसा और आपके भीतर जो जागती हुई ज्योति है ? इस निर्दोष अबला के लिए नहीं है कोई दया आपके हृदय में ?

डॉ० बिसन—वह दया ही तो जागी थी, जो इस विष में बदल गई।

रेखा—(**निराश स्वर में सुजाता की साँस पर अपना हाथ रखकर**)

प्राण बाकी तो हैं।

डॉ० बिसन——(**एकाएक आवेश-भरे स्वर में**) एक मोटी सुतली ले आओ। सेफ्टी रेजर का ब्लेड, यह रहा। (**मेज पर से ब्लेड निकालता है**) एक गिलास भी।

[**रेखा दौड़कर भीतर चली जाती है**]

डॉ० बिसन—(**सुजाता के पैर का अंगूठा पकड़ता है**) विधाता का यह कैसा विधान !

रेखा—(**सुतली और एक काँच का गिलास लेकर आती है। दोनों चीजें मेज पर रख देती है**) बचा दो दीदी को।

डॉ० बिसन—(**सुतली लेकर**) मैं पैर को मजबूती से बाँधता हूँ। (**सुजाता के पैर को बाँधता है**) वह बेंत उठाओ। (**दोनों मिलकर पैर में टूर्नीकेट बाँधते हैं**) अब अँगुली को काटता हूँ। (**अँगुली काटने लगता है**)।

रेखा—(**चिल्लाती है**) डॉक्टर साहब ! इतने ऊपर से ?

डॉ० बिसन—शोर मत करो। ज़हरीला खून चूमकर निकालता हूँ। वह गिलास उठाओ।

[**रेखा गिलास उठाकर डॉक्टर को देती है। डॉ० बिसन गिलास में मुँह का खून थूकता है और फिर अँगुली मुँह में लेता है और चूसकर गिलास में थूकता है।**]

रेखा—डॉक्टर साहब, इस जहर में आपको···? यह जहर मिला खून !

डॉ० बिसन—यदि मेरे मुँह में कोई घाव न हो तो कुछ न होगा।

रेखा—डॉक्टर साहब, लेकिन डॉक्टर साहब, आपके मुँह में घाव है। आज आपने दाढ़ का दाँत निकाला है।

डॉ० बिसन—तुमसे किसने कहा ? (**निराश होकर**) क्यों तुमने ही

मेरे इस भूले हुए सत्य को सामने रख दिया ? ओ ऽ ऽ ह! (दीर्घ श्वास छोड़ता है)।

रेखा - एक निरपराधिनी अबला !

डॉ० बिसन—हाँ-हाँ ! वही तो ! (फिर अँगुली चूसने लगता है)।

रेखा—पति के मुख से निरपराधिनी सम्बोधन सुनने की जिसकी सबसे बड़ी साध थी।

डॉ० बिसन—(फिर गिलास में थूकता है) देखो, विजय लौटे या नहीं ? (फिर अँगुली मुँह में लेता है)।

रेखा—(बाहर जाकर लौटती है) नहीं आए।

डॉ० बिसन—(गिलास में थूककर सुजाता की नाड़ी देखता है) नहीं आए ? फिर देखो।

[रेखा फिर बाहर जाती है]

डॉ० बिसन—बड़ी देर हो गई ! (फिर अँगुली मुँह में लेता है)।

रेखा—(भीतर लौटती है) नहीं आए।

[डॉ० बिसन फिर गिलास में थूकता है]

रेखा—डॉक्टर साहब, नाड़ी क्या कहती है ?

डॉ० बिसन—क्या बताऊँ ? बड़े जहरीले साँप ने इन्हें डसा है।

विजय—(आते हुए) और वह सर्प मैं ही हूँ, डॉक्टर।

डॉ० बिसन—इंजेक्शन लाए ?

विजय—नहीं मिले।

डॉ० बिसन—कहीं मिलने की आशा ?

विजय—कोई नहीं।

[डॉ० बिसन सिर पीटकर भूमि पर बैठ जाता है, फिर उठकर सुजाता की अँगुली चूसने लगता है।]

विजय—डॉक्टर, यह क्या करने लगे? तुम्हारे मुँह में घाव है। जानकार होकर भी तुम···

डॉ० बिसन—**(गिलास में थूककर)** चुप रहो, शोर मत करो। मैं इन्हें जिलाना चाहता हूँ कि तुम इनके मुँह से सुन सको–कि डॉक्टर के मन में कोई पाप नहीं था। **(भूमि पर चक्कर खाता हुआ गिरने लगता है। सँभल जाता है)** कहो, सुजाता पवित्र है।

विजय—सुजाता पवित्र है—सती-सी, सावित्री-सी।

डॉ० बिसन—**(सुजाता की नाड़ी देख निराश हो अपना माथा पकड़ अलग खड़ा हो जाता है)** नहीं! अब कुछ नहीं!

रेखा—तुम कोई न जिला सकोगे क्या मेरी दीदी को? **(सुजाता को उठाकर)** उठो, उठो, दीदी! तुम जानती थीं कि तुम्हें काले विषधर ने काट लिया था। तुमने एक काँटा कहकर उस ज़हरीले दाँत को सहन कर लिया। शायद वह पति द्वारा किए गए एक सती नारी के तिरस्कार से अधिक कोमल और ज्यादा मीठा था। **(सुजाता की छाती पर अपना सिर रख देती है)**।

विजय—अपनी अर्द्धांगिनी पर किसी वाहरी वासना की परछाईं पड़ने मात्र से जो उसे त्याज्य और कलंकित समझने लगता है—हे भगवान्! ऐसे उस अत्याचारी और अन्धे समाज को त्राण दो। उसी समाज की एक इकाई यह विजय है, हे देवी! अपने इस पापी पति को क्षमा करो। **(सुजाता के चरणों पर सिर रखता है)**।

डॉ० बिसन—**(फिर सुजाता की परीक्षा कर)** अब कुछ नहीं हो सकता, पंछी उड़ गया! **(भूमि पर गिरते हुए)** मेरा भी सिर चकराता है। मैं गिरता हूँ। **(भूमि पर गिर जाता है)**।

विजय और रेखा—**(डॉक्टर को सँभालते हुए)** डाक्टर साहब!

सुजाता—**(आँखें खोलकर क्षीण स्वर में कराहती है)** अँ ऽ ऽ ऽ!

रेखा—दीदी ! दीदी !

सुजाता—डॉक्टर साहब को बुला दो ।

विजय—डॉक्टर साहब ? डॉक्टर साहब !

[यवनिका]

39857
21.6.15

G DRA

Library IIAS, Shimla
H 812.8 P 195 S
00039857